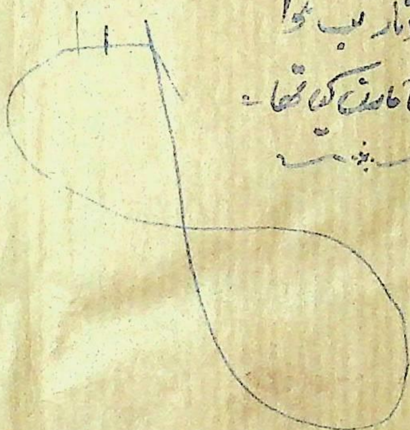


شری کرشن جی کا اوتار کب ہوا
اور کیوں ہوا. اوتار کا منشا کیا تھا۔

ॐ

श्रीमद्भागवतान्तर्गत

रासपञ्चाध्यायी

[पदच्छेद, अन्वय, अन्वयार्थ

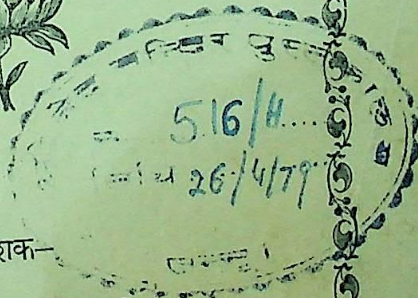
और

हिंदी-भावानुवाद]

Hindi Bhasha.

(महाकवि श्रीनन्ददासकृत रासपञ्चाध्यायीसहित)





प्रकाशक—

चिम्मनलाल गोस्वामी

मुद्रक
हनुमानप्रसाद पोद्दार
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०१५, संस्करण १०००
मूल्य १) एक रुपया मात्र

रासलीला-रहस्य

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥
(श्रीमद्भागवत १० । २९ । १)

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें २९ से ३३ अध्यायतक भगवान्‌की रासलीलाका प्रसङ्ग है । इसीको रासपञ्चाध्यायी कहते हैं । इस रासपञ्चाध्यायीमें श्रीमद्भागवतवर्णित तत्त्वोंके सारभूत परम तत्त्वका परमोज्ज्वल प्रकाश है। यह वस्तुतः श्रीमद्भागवतके पञ्चप्राण-स्वरूप है। भगवान्‌की दिव्य लीलाका भाव न समझकर केवल बाह्यदृष्टिसे देखनेपर यह सारी कथा शृङ्गार-रसपूर्ण दिखायी दे सकती है और इससे मनुष्य भ्रमग्रस्त हो सकता है । इसीसे सम्भवतः श्रीशुकदेवजीने उपर्युक्त प्रथम श्लोकमें प्रथम शब्द 'भगवान्' दिया है, जिससे पढ़नेवाला व्यक्ति इसे भगवान्‌की लीला समझकर ही पढ़े । वस्तुतः यह लौकिक काम-प्रसङ्ग कदापि नहीं है । इसके श्रोता हैं—विवेक-वैराग्यसम्पन्न, मुमुक्षु, धर्मज्ञानपूर्ण मरणकी प्रतीक्षा करनेवाले महाराज परीक्षित् और वक्ता हैं—ब्रह्मविद्वरिष्ठ परम योगी जीवन्मुक्त सर्वऋषिमुनिमान्य श्रीशुकदेवजी। ऐसे वक्ता-श्रोता लौकिक शृङ्गारकी बातें कहें सुनें, यह सोचना ही भूल है। वस्तुतः इन पाँच अध्यायोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी परम दिव्य अन्तरङ्ग लीलाका, निजस्वरूपभूता महाभावरूपा ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाजी तथा उन्हींकी कायव्यूहरूपा दिव्य कृष्णप्रेममयी गोपाङ्गनाओंके साथ होनेवाली भगवान्‌की रसमयी लीलाका वर्णन

है। 'रास' शब्दका मूल 'रस' है और 'रस' स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं—'रसो वै सः'। जिस दिव्य क्रीडामें एक ही रस अनेक रसोंके रूपमें होकर अनन्त-अनन्त रसका समास्वादन करे; एक रस ही रस-समूहके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद-आस्वादक, लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें क्रीडा करे—उसका नाम 'रास' है। अतएव यह रास-लीला भी लीलामय भगवान्का ही स्वरूप है। भगवान्की यह दिव्य लीला, भगवान्के दिव्य धाममें दिव्यरूपसे निरन्तर हुआ करती है। भगवान्की विशेष कृपासे प्रेमी साधकोंके हितार्थ कभी-कभी यह अपने दिव्य धामके साथ ही भूमण्डलपर भी अवतीर्ण हुआ करती है, जिसको देख-सुन एवं गाकर तथा स्मरण-चिन्तन करके अधिकारी पुरुष रसस्वरूप भगवान्की इस परम रसमयी लीलाका आनन्द ले सकें और स्वयं भी भगवान्की लीलामें सम्मिलित होकर अपनेको कृतकृत्य कर सकें। इस पञ्चाध्यायीमें वंशीध्वनि, गोपियोंके अभिसार, श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, दिव्य रमण, श्रीराधाजीके साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियोंके द्वारा दिये हुए वसनासनपर विराजना, गोपियोंके कूट प्रश्नका उत्तर, रासनृत्य, क्रीडा, जलकेलि और वनविहारका वर्णन है—जो मानवी भाषामें होनेपर भी वस्तुतः परम दिव्य है।

यह बात पहले ही समझ लेनी चाहिये कि भगवान्का शरीर जीव-शरीरकी भाँति जड नहीं होता। जडकी सत्ता केवल जीवकी दृष्टिमें होती है, भगवान्की दृष्टिमें नहीं। यह देह है और यह देही है, इस प्रकारका भेदभाव केवल प्रकृतिके राज्यमें होता है। अप्राकृत लोकमें—जहाँकी प्रकृति भी चिन्मय है—सब कुछ

चिन्मय ही होता है; वहाँ अचित्‌की प्रतीति तो केवल चिद्विलास अथवा भगवान्‌की लीलाकी सिद्धिके लिये होती है। इसलिये स्थूलतामें—या यों कहिये कि जडराज्यमें रहनेवाला मस्तिष्क जब भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंके सम्बन्धमें विचार करने लगता है, तब वह अपनी पूर्व वासनाओंके अनुसार जडराज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं और क्रियाओंका ही आरोप उस दिव्य राज्यके विषयमें भी करता है; इसलिये दिव्यलीलाके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जाता है। यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल रसका एक दिव्य प्रकाश है। जड जगत्‌की बात तो दूर रही, ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्‌में भी यह प्रकट नहीं होता। अधिक क्या, साक्षात् चिन्मय तत्त्वमें भी इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशाभास नहीं देखा जाता। इस परम रसकी स्फूर्ति तो परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है। इस रासलीलाके यथार्थ स्वरूप और परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है, दूसरे लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवान्‌के समान ही गोपियाँ भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जडताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है। उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदयमें श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमामृत है। उनकी इस अलौकिक स्थितिमें स्थूल-शरीर, उसकी स्मृति और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अङ्ग-सङ्ग-की कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। ऐसी कल्पना

तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकड़े हुए जीवोंकी ही होती है। जिन्होंने गोपियोंको पहचाना है, उन्होंने गोपियोंकी चरणधूलिका स्पर्श प्राप्त करके अपनी कृतकृत्यता चाही है। ब्रह्मा, शङ्कर, उद्धव और अर्जुनने गोपियोंकी उपासना करके भगवान्के चरणों-में वैसे प्रेमका वरदान प्राप्त किया है या प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है। उन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुषके भाव-जैसा मानना गोपियोंके प्रति, भगवान्के प्रति और वास्तवमें सत्यके प्रति महान् अन्याय एवं अपराध है। इस अपराधसे बचनेके लिये भगवान्की दिव्य लीलाओंपर विचार करते समय उनकी अप्राकृत दिव्यताका स्मरण रखना परमावश्यक है।

भगवान्का चिदानन्दघन शरीर दिव्य है। वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादानरहित है। वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है। इसी प्रकार गोपियाँ दिव्य जगत्की भगवान्-की स्वरूपभूता अन्तरङ्ग-शक्तियाँ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध भी दिव्य ही है। यह उच्चतम भावराज्यकी लीला स्थूल शरीर और स्थूल मनसे परे है। आवरण-भङ्गके अनन्तर अर्थात् चीरहरण करके जब भगवान् स्वीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है।

प्राकृत देहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन देहोंके संयोगसे। जबतक 'कारण शरीर' रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता। 'कारण शरीर' कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन संस्कारोंको, जो देह-निर्माणमें कारण होते हैं। इस 'कारण शरीर' के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अथवा 'कारण' का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है। इसी कर्मबन्धनके कारण

पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है—जो रक्त, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है। प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निकृष्ट मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्ध्वरेता महापुरुषके संकल्पसे। बिन्दुके अधोगामी होनेपर कर्त्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा विना ही मैथुनके नाभि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तक आदिके स्पर्शसे, विना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा विना देखे केवल संकल्पसे ही उत्पन्न हो। ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष-शरीरके विना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं—योनि और बिन्दुके संयोगजनित ही। ये सभी प्राकृत शरीर हैं। इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित 'निर्माणकाय' यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परंतु वे भी हैं प्राकृत ही। पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर भी प्राकृत ही हैं। अप्राकृत शरीर इन सबसे विलक्षण हैं, जो महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते और भगवद्देह तो साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। देव-शरीर प्रायः रक्त-मांस-मेद-अस्थिवाले नहीं होते। अप्राकृत शरीर भी नहीं होते। फिर भगवान् श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप शरीर तो रक्त-मांस-अस्थिमय होता ही कैसे? वह तो सर्वथा चिदानन्दमय है। उसमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी और लीला तथा लीला-पुरुषोत्तमका भेद नहीं है। श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग पूर्ण श्रीकृष्ण है, श्रीकृष्णका मुखमण्डल जैसे पूर्ण श्रीकृष्ण है, वैसे ही श्रीकृष्णका पदनख भी पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णकी सभी इन्द्रियोंसे सभी काम हो सकते हैं। उनके कान देख सकते हैं, उनकी आँखें सुन सकती हैं, उनकी नाक स्पर्श कर सकती

है, उनकी रसना सूँघ सकती है, उनकी त्वचा स्वाद ले सकती है। वे हाथोंसे देख सकते हैं। आँखोंसे चल सकते हैं। श्रीकृष्णका सब कुछ श्रीकृष्ण होनेके कारण वह सर्वथा पूर्णतम है। इसीसे 'उनकी रूपमाधुरी नित्यवर्द्धनशील, नित्य नवीन सौन्दर्यमयी है। उसमें ऐसा चमत्कार है कि वह स्वयं अपनेको ही आकर्षित कर लेती है। फिर उनके सौन्दर्य-माधुर्यसे गौ-हरिण और वृक्ष-बेल पुलकित हो जायँ, इसमें तो कहना ही क्या है। भगवान्‌के ऐसे स्वरूपभूत शरीरसे गंदा मैथुनकर्म सम्भव नहीं। मनुष्य जो कुछ खाता है, उससे क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि बनकर अन्तमें शुक्र बनता है; इसी शुक्रके आधारपर शरीर रहता है और मैथुनक्रियामें इसी शुक्रका क्षरण हुआ करता है। भगवान्‌का शरीर न तो कर्मजन्य है, न मैथुनी सृष्टिका है और न दैवी ही है। वह तो इन सबसे परे सर्वथा विशुद्ध भगवत्स्वरूप है। उसमें रक्त, मांस, अस्थि आदि नहीं हैं; अतएव उसमें शुक्र भी नहीं है। इसलिये उससे प्राकृत पाञ्चभौतिक शरीरोंवाले स्त्री-पुरुषोंके रमण या मैथुनकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान्‌को उपनिषद्‌में 'अखण्ड ब्रह्मचारी' बतलाया गया है और इसीसे भागवतमें उनके लिये 'अवरुद्धसौरत' आदि शब्द आये हैं। फिर कोई शङ्का करे कि उनके सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके इतने पुत्र कैसे हुए तो इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सारी भागवती सृष्टि थी, भगवान्‌के संकल्पसे हुई थी। भगवान्‌के शरीरमें जो रक्त-मांस आदि दिखलायी पड़ते हैं, वह तो भगवान्‌की योगमायाका चमत्कार है। इस विवेचनसे भी यही सिद्ध होता है कि गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका

जो रमण हुआ, वह सर्वथा दिव्य भगवत्-राज्यकी लीला है, लौकिक काम-क्रीडा नहीं।

× × × ×

उन गोपियोंकी साधना पूर्ण हो चुकी है। भगवान्ने अगली रात्रियोंमें उनके साथ विहार करनेका प्रेमसंकल्प कर लिया है। इसीके साथ उन गोपियोंको भी जो नित्यसिद्धा हैं, जो लोकदृष्टिमें विवाहिता भी हैं, इन्हीं रात्रियोंमें दिव्य-लीलामें सम्मिलित करना है। वे अगली रात्रियाँ कौन-सी हैं, यह बात भगवान्की दृष्टिके सामने है। उन्होंने शारदीय रात्रियोंको देखा। 'भगवान्ने देखा'--इसका अर्थ सामान्य नहीं, विशेष है। जैसे सृष्टिके प्रारम्भमें 'स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्।'--भगवान्के इस ईक्षणसे जगत्की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रासके प्रारम्भमें भगवान्के प्रेम-वीक्षणसे शरत्कालकी दिव्य रात्रियोंकी सृष्टि होती है। मल्लिका-पुष्प, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपनसामग्री भगवान्के द्वारा वीक्षित है अर्थात् लौकिक नहीं, अलौकिक--अप्राकृत है। गोपियोंने अपना मन श्रीकृष्णके मनमें मिला दिया था। उनके पास स्वयं मन न था। अब प्रेम-दान करनेवाले श्रीकृष्णने विहारके लिये नवीन मनकी—दिव्य मनकी सृष्टि की। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी यही योगमाया है जो रास-लीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री एवं दिव्य मनका निर्माण किया करती है। इतना होनेपर भगवान्की बाँसुरी बजती है।

भगवान्की बाँसुरी जडको चेतन, चेतनको जड, चलको अचल और अचलको चल, विक्षिप्तको समाधिस्थ और समाधिस्थ-को विक्षिप्त बनाती ही रहती है। भगवान्का प्रेमदान प्राप्त करके गोपियाँ निस्संकल्प, निश्चिन्त होकर घरके काममें लगी हुई थीं। कोई गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा—'धर्म'के काममें लगी हुई थी, कोई

गो-दोहन आदि 'अर्थ'के काममें लगी हुई थीं, कोई साज-शृङ्गार आदि 'काम'के साधनमें व्यस्त थी, कोई पूजा-पाठ आदि 'मोक्ष'-साधनमें लगी हुई थी। सब लगी हुई थीं अपने-अपने काममें, परंतु वास्तवमें उनमेंसे एक भी पदार्थ चाहती न थीं। यही उनकी विशेषता थी और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वंशीध्वनि सुनते ही कर्मकी पूर्णतापर उनका ध्यान नहीं गया; काम पूरा करके चलें, ऐसा उन्होंने नहीं सोचा। वे चल पड़ीं उस विषयासक्ति-शून्य संन्यासीके समान, जिसका हृदय वैराग्यकी प्रदीप्त ज्वालासे परिपूर्ण है। किसीने किसीसे पूछा नहीं, सलाह नहीं की; अस्त-व्यस्त गतिसे जो जैसे थी, वैसे ही श्रीकृष्णके पास पहुँच गयी। वैराग्यकी पूर्णता और प्रेमकी पूर्णता एक ही बात है, दो नहीं। गोपियाँ व्रज और श्रीकृष्णके बीचमें मूर्तिमान् वैराग्य हैं या मूर्तिमान् प्रेम, क्या इसका निर्णय कोई कर सकता है?

साधनाके दो भेद हैं—१–मर्यादापूर्ण वैध साधना और २—मर्यादारहित अवैध प्रेमसाधना। दोनोंके ही अपने-अपने स्वतन्त्र नियम हैं। वैध साधनामें जैसे नियमोंके बन्धनका, सनातन पद्धतिका, कर्त्तव्योंका और विविध पालनीय धर्मोंका त्याग साधनासे भ्रष्ट करनेवाला और महान् हानिकर है, वैसे ही अवैध प्रेमसाधनामें इनका पालन कलङ्करूप होता है। यह बात नहीं कि इन सब आत्मोन्नतिके साधनोंको वह अवैध प्रेमसाधनाका साधक जान-बूझकर छोड़ देता है। बात यह है कि वह स्तर ही ऐसा है, जहाँ इनकी आवश्यकता नहीं है। ये वहाँ अपने-आप वैसे ही छूट जाते हैं, जैसे नदीके पार पहुँच जानेपर स्वाभाविक ही नौकाकी सवारी छूट जाती है। जमीनपर न तो नौकापर बैठकर चलनेका प्रश्न उठता है और न ऐसा

चाहने या करनेवाला बुद्धिमान् ही माना जाता है । ये सब साधन वहींतक रहते हैं, जहाँतक सारी वृत्तियाँ सहज स्वेच्छासे सदा-सर्वदा एकमात्र भगवान्की ओर दौड़ने नहीं लग जातीं।

श्रीगोपीजन साधनाके इसी उच्च स्तरमें परम आदर्श थीं। उनकी सारी वृत्तियाँ सर्वथा श्रीकृष्णमें ही निमग्न रहती थीं। इसीसे उन्होंने देह-गेह, पति-पुत्र, लोक-परलोक, कर्तव्य-धर्म--सबको छोड़कर, सबका उल्लङ्घनकर एकमात्र परमधर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको ही पानेके लिये अभिसार किया था। उनका यह पति-पुत्रोंका त्याग, यह सर्व-धर्मका त्याग ही उनके स्तरके अनुरूप स्वधर्म है।

इस 'सर्वधर्मत्याग' रूप स्वधर्मका आचरण गोपियों-जैसे उच्च स्तरके साधकोंमें ही सम्भव है; क्योंकि सब धर्मोंका यह त्याग वही कर सकते हैं, जो उसका यथाविधि पूरा पालन कर चुकनेके बाद इसके परम फल अनन्य और अचिन्त्य देवदुर्लभ भगवत्प्रेमको प्राप्त कर चुकते हैं। वे भी जान-बूझकर त्याग नहीं करते। सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर तैलदीपककी भाँति स्वतः ही ये धर्म उसे त्याग देते हैं। यह त्याग तिरस्कारमूलक नहीं, वरं तृप्तिमूलक है । भगवत्-प्रेमकी ऊँची स्थितिका यही स्वरूप है। देवर्षि नारदजीका एक सूत्र है--

'वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ।'

'जो वेदोंका (वेदमूलक समस्त धर्ममर्यादाओंका) भी भलीभाँति त्याग कर देता है, वह अखण्ड असीम भगवत्प्रेमको प्राप्त करता है ।'

जिसको भगवान् अपनी वंशीध्वनि सुनाकर--नाम ले-लेकर बुलायें, वह भला, किसी दूसरे धर्मकी ओर ताककर कब और कैसे रुक सकता है ।

रोकनेवालोंने रोका भी, परंतु हिमालयसे निकलकर समुद्रमें गिरनेवाली ब्रह्मपुत्र नदीकी प्रखर धाराको क्या कोई रोक सकता है ? वे न रुकीं, नहीं रोकी जा सकीं। जिनके चित्तमें कुछ प्राक्तन संस्कार अवशिष्ट थे, वे अपने अनधिकारके कारण शरीरसे जानेमें समर्थ न हुईं। उनका शरीर घरमें पड़ा रह गया, भगवान्के वियोग-दुःखसे उनके सारे कलुष धुल गये, ध्यानमें प्राप्त भगवान्के प्रेमालिङ्गनसे उनके समस्त पुण्योंका परम फल प्राप्त हो गया और वे भगवान्के पास सशरीर जानेवाली गोपियोंके पहुँचनेसे पहले ही भगवान्के पास पहुँच गयीं। भगवान्में मिल गयीं। यह शास्त्रका प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि पाप-पुण्यके कारण ही वन्धन होता है और शुभाशुभका भोग होता है। शुभाशुभ कर्मोंके भोगसे जब पाप-पुण्य दोनों नाश हो जाते हैं, तब जीवकी मुक्ति हो जाती है। यद्यपि गोपियाँ पाप-पुण्यसे रहित श्रीभगवान्की प्रेम-प्रतिमास्वरूपा थीं, तथापि लीलाके लिये यह दिखाया गया है कि अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास न जा सकनेसे उनके विरहानलसे उनको इतना महान् संताप हुआ कि उससे उनके सम्पूर्ण अशुभका भोग हो गया, उनके समस्त पाप नष्ट हो गये और प्रियतम भगवान्के ध्यानसे उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उससे उनके सारे पुण्योंका फल मिल गया। इस प्रकार पाप-पुण्योंका पूर्णरूपसे अभाव होनेसे उनकी मुक्ति हो गयी। चाहे किसी भी भावसे हो—कामसे, क्रोधसे, लोभसे—जो भगवान्के मङ्गलमय श्रीविग्रहका चिन्तन करता है, उसके भावकी अपेक्षा न करके वस्तुशक्तिसे ही उसका कल्याण हो जाता है। यह भगवान्के श्रीविग्रहकी विशेषता है। भावके द्वारा तो एक प्रस्तरमूर्ति भी परम कल्याणका दान कर सकती है, बिना भावके ही कल्याणदान भगवद्विग्रहका सहज दान है।

भगवान् हैं बड़े लीलामय। जहाँ वे अखिल विश्वके विधाता ब्रह्मा, शिव आदिके भी वन्दनीय निखिल जीवोंके प्रत्यगात्मा हैं,

वहीं वे लीलानटवर गोपियोंके इशारेपर नाचनेवाले भी हैं। उन्हींकी इच्छासे उन्हींके प्रेमाह्वानसे, उन्हींके वंशी-निमन्त्रणसे प्रेरित होकर गोपियाँ उनके पास आयीं; परंतु उन्होंने ऐसी भावभङ्गी प्रकट की, ऐसा स्वाँग बनाया, मानो उन्हें गोपियोंके आनेका कुछ पता ही न हो। शायद गोपियोंके मुँहसे वे उनके हृदयकी बात—प्रेमकी बात सुनना चाहते हों। सम्भव है, वे विप्रलम्भके द्वारा उनके मिलन-भावको परिपुष्ट करना चाहते हों। बहुत करके तो ऐसा मालूम होता है कि कहीं लोग इसे साधारण बात न समझ लें, इसलिये साधारण लोगोंके लिये उपदेश और गोपियोंका अधिकार भी उन्होंने सबके सामने रख दिया। उन्होंने बतलाया—'गोपियो ! व्रजमें कोई विपत्ति तो नहीं आयी, घोर रात्रिमें यहाँ आनेका कारण क्या है ? घरवाले ढूँढ़ते होंगे, अब यहाँ ठहरना नहीं चाहिये। वनकी शोभा देख ली, अब बच्चों और बछड़ोंका भी ध्यान करो। धर्मके अनुकूल मोक्षके खुले हुए द्वार अपने सगे-सम्बन्धियोंकी सेवा छोड़कर वनमें दर-दर भटकना स्त्रियोंके लिये अनुचित है। स्त्रीको अपने पतिकी ही सेवा करनी चाहिये, वह कैसा भी क्यों न हो। यही सनातनधर्म है। इसीके अनुसार तुम्हें चलना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम सब मुझसे प्रेम करती हो। परंतु प्रेममें शारीरिक संनिधि आवश्यक नहीं है। श्रवण, स्मरण, दर्शन और ध्यानसे सांनिध्यकी अपेक्षा अधिक प्रेम बढ़ता है। जाओ, तुम सनातन सदाचारका पालन करो। इधर-उधर मनको मत भटकने दो।'

श्रीकृष्णकी यह शिक्षा गोपियोंके लिये नहीं, सामान्य नारी-जातिके लिये है। गोपियोंका अधिकार विशेष था और उसको प्रकट करनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे थे। इन्हें सुनकर गोपियोंकी क्या दशा हुई और इसके उत्तरमें उन्होंने श्रीकृष्णसे क्या प्रार्थना की; वे श्रीकृष्णको मनुष्य नहीं मानतीं,

उनके पूर्णब्रह्म सनातन स्वरूपको भलीभाँति जानती हैं और यह जानकर ही उनसे प्रेम करती हैं—इस बातका कितना सुन्दर परिचय दिया; यह सब विषय मूलमें ही पाठ करने योग्य है। सचमुच जिनके हृदयमें भगवान्‌के परमतत्त्वका वैसा अनुपम ज्ञान और भगवान्‌के प्रति वैसा महान् अनन्य अनुराग है और सचाईके साथ जिनकी वाणीमें वैसे उद्गार हैं, वे ही विशेष अधिकारवान् हैं।

गोपियोंकी प्रार्थनासे यह बात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्णको अन्तर्यामी, योगेश्वरेश्वर परमात्माके रूपमें पहचानती थीं और जैसे दूसरे लोग गुरु, सखा या माता-पिताके रूपमें श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं, वैसे ही वे पतिके रूपमें श्रीकृष्णसे प्रेम करती थीं, जो शास्त्रोंमें मधुर भावके—उज्ज्वल परम रसके नामसे कहा गया है। जब प्रेमके सभी भाव पूर्ण होते हैं और साधकोंको स्वामि-सखादिके रूपमें भगवान् मिलते हैं, तब गोपियोंने क्या अपराध किया था कि उनका यह उच्चतम भाव—जिसमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य सब-के-सब अन्तर्भूत हैं और जो सबसे उन्नत एवं सबका अन्तिम रूप है—क्यों न पूर्ण हो? भगवान्‌ने उनका भाव पूर्ण किया और अपनेको असंख्य रूपोंमें प्रकट करके गोपियोंके साथ क्रीडा की। उनकी क्रीडाका स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः'। जैसे नन्हा-सा शिशु दर्पण अथवा जलमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, वैसे ही रमेश भगवान् और व्रजसुन्दरियोंने रमण किया। अर्थात् सच्चिदानन्दघन सर्वान्तर्यामी प्रेमरसस्वरूप, लीलारसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी ह्लादिनी शक्तिरूपा आनन्द-चिन्मयरस-प्रतिभाविता अपनी ही प्रतिमूर्तिसे उत्पन्न अपनी प्रतिबिम्ब-

स्वरूपा गोपियोंसे आत्मक्रीडा की। पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसराज रसिक-शेखर रस-परब्रह्म अखिलरसामृतविग्रह भगवान् श्रीकृष्णकी इस चिदानन्द-रसमयी दिव्य क्रीडाका नाम ही रास है। इसमें न कोई जड शरीर था, न प्राकृत अङ्ग-सङ्ग था और न इसके सम्बन्धकी प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही थीं। यह था चिदानन्दमय भगवान्का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाममें सर्वदा होते रहनेपर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

वियोग ही संयोगका पोषक है, मान और मद ही भगवान्की लीलामें बाधक हैं। भगवान्की दिव्य लीलामें मान और मद भी, जो कि दिव्य हैं, इसीलिये होते हैं कि उनसे लीलामें रसकी और भी पुष्टि हो। भगवान्की इच्छासे ही गोपियोंमें लीलानुरूप मान और मदका संचार हुआ और भगवान् अन्तर्धान हो गये। जिनके हृदयमें लेशमात्र भी मद अवशेष है, नाममात्र भी मानका संस्कार शेष है, वे भगवान्के सम्मुख रहनेके अधिकारी नहीं। अथवा वे भगवान्के पास रहनेपर भी, उनका दर्शन नहीं कर सकते। परंतु गोपियाँ गोपियाँ थीं, उनसे जगत्के किसी प्राणीकी तिलमात्र भी तुलना नहीं है। भगवान्के वियोगमें गोपियोंकी क्या दशा हुई, इस बातको रासलीलाका प्रत्येक पाठक जानता है। गोपियोंके शरीर-मन-प्राण, वे जो कुछ थीं—सब श्रीकृष्णमें एकतान हो गये। उनके प्रेमोन्मादका वह गीत, जो उनके प्राणोंका प्रत्यक्ष प्रतीक है, आज भी भावुक भक्तोंको भावमग्न करके भगवान्के लीलालोकमें पहुँचा देता है। एक बार सरस हृदयसे, हृदयहीन होकर नहीं, पाठ करनेमात्रसे ही वह गोपियोंकी महत्ता सम्पूर्ण हृदयमें भर देता है। गोपियोंके उस 'महाभाव'—उस 'अलौकिक प्रेमोन्माद'को देखकर श्रीकृष्ण भी अन्तर्हित न रह सके, उनके सामने 'साक्षात् मन्मथमन्मथ'रूपसे प्रकट हुए और उन्होंने

मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया कि 'गोपियो ! मैं तुम्हारे प्रेमभावका नित्य ऋणी हूँ। यदि मैं अनन्त कालतक तुम्हारी सेवा करता रहूँ तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मेरे अन्तर्धान होनेका प्रयोजन तुम्हारे चित्तको दुखाना नहीं था, बल्कि तुम्हारे प्रेमको और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।' इसके बाद रासक्रीडा प्रारम्भ हुई।

जिन्होंने अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्याय किया है, वे जानते हैं कि योगसिद्धिप्राप्त साधारण योगी भी कायव्यूहके द्वारा एक साथ अनेक शरीरोंका निर्माण कर सकते हैं और अनेक स्थानोंपर उपस्थित रहकर पृथक्-पृथक् कार्य कर सकते हैं। इन्द्रादि देवगण एक ही समय अनेक स्थानोंपर उपस्थित होकर अनेक यज्ञोंमें एक साथ आहुति स्वीकार कर सकते हैं। निखिल योगियों और योगेश्वरोंके ईश्वर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण यदि एक ही साथ अनेक गोपियोंके साथ क्रीड़ा करें तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? जो लोग भगवान्को भगवान् नहीं स्वीकार करते, वे ही अनेकों प्रकारकी शङ्का-कुशङ्काएँ करते हैं। भगवान्की निज लीलामें इन तर्कोंके लिये कोई स्थान नहीं है।

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह प्रश्न भी श्रीकृष्णके स्वरूपको भुलाकर ही उठाया जाता है। श्रीकृष्ण जीव नहीं हैं कि जगत्की वस्तुओंमें उनका हिस्सेदार दूसरा जीव भी हो। जो कुछ भी था, है और आगे होगा—उसके एकमात्र पति श्रीकृष्ण ही हैं। अपनी प्रार्थनामें गोपियोंने और परीक्षित्के प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने यही बात कही है कि गोपी, गोपियोंके पति, उनके पुत्र, सगे-सम्बन्धी और जगत्के समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे, परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं—वही श्रीकृष्ण हैं। कोई भ्रमसे, अज्ञानसे भले ही श्रीकृष्णको पराया समझे; वे किसीके पराये नहीं हैं, सबके अपने हैं, सब उनके हैं।

श्रीकृष्णकी दृष्टिसे, जो कि वास्तविक दृष्टि है, कोई परकीया है ही नहीं; सब स्वकीया हैं, सब केवल अपना ही लीलाविलास है, सभी स्वरूपभूता आत्मस्वरूपा अन्तरङ्गा शक्ति हैं। गोपियाँ इस बातको जानती थीं और स्थान-स्थानपर उन्होंने ऐसा कहा है।

ऐसी स्थितिमें 'जारभाव' और 'औपपत्य' का कोई लौकिक अर्थ नहीं रह जाता। जहाँ काम नहीं है, अङ्ग-सङ्ग नहीं है, वहाँ 'औपपत्य' और 'जारभाव' की कल्पना ही कैसे हो सकती है? गोपियाँ परकीया नहीं थीं, स्वकीया थीं, परंतु उनमें परकीयाभाव था। परकीया होनेमें और परकीयाभाव होनेमें आकाश-पातालका अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्त्वकी होती हैं—(१) अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, (२) मिलनकी उत्कट उत्कण्ठा और (३) दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्वकीयाभावमें निरन्तर एक साथ रहनेके कारण ये तीनों बातें गौण हो जाती हैं, परंतु परकीया-भावमें ये तीनों भाव उत्तरोत्तर बढ़ते रहते हैं। कुछ गोपियाँ जारभाव-से श्रीकृष्णको चाहती थीं। इसका इतना ही अर्थ है कि वे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करती थीं, मिलनके लिये उत्कण्ठित रहती थीं और श्रीकृष्णके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी आँखोंसे ही देखती थीं। चौथा भाव विशेष महत्त्वका और है—वह यह कि स्वकीया अपने घरका, अपना और अपने पुत्र-कन्याओंका पालन-पोषण, रक्षणा-वेक्षण पतिसे चाहती है। वह समझती है कि इनकी देख-रेख करना पतिका कर्तव्य है; क्योंकि ये सब उसीके आश्रित हैं और वह पतिसे ऐसी आशा भी रखती है। कितनी ही पतिपरायणा क्यों न हो, स्वकीयामें यह सकामभाव छिपा रहता ही है। परंतु परकीया अपने प्रियतमसे कुछ नहीं चाहती, कुछ भी आशा नहीं रखती; वह तो केवल अपनेको देकर ही उसे सुखी करना चाहती है। श्रीगोपियोंमें यह भाव भी भलीभाँति प्रस्फुटित था। इसी

विशेषताके कारण संस्कृत-साहित्यके कई ग्रन्थोंमें निरन्तर चिन्तनके उदाहरणस्वरूप परकीयाभावका वर्णन आता है।

गोपियोंके इस भावके एक नहीं, अनेकों दृष्टान्त श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं; इसलिये गोपियोंपर परकीयापनका आरोप उनके भावको न समझनेके कारण है। जिसके जीवनमें साधारण धर्मकी एक हल्की-सी प्रकाश-रेखा आ जाती है, उसीका जीवन परम पवित्र और दूसरोंके लिये आदर्शस्वरूप बन जाता है। फिर वे गोपियाँ, जिनका जीवन साधनाकी चरम सीमापर पहुँच चुका है, अथवा जो नित्यसिद्धा एवं भगवान्‌की स्वरूपभूता हैं, या जिन्होंने कल्पोंतक साधना करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका सेवाधिकार प्राप्त कर लिया है, सदाचारका उल्लङ्घन कैसे कर सकती हैं? और समस्त धर्म-मर्यादाओंके संस्थापक श्रीकृष्णपर धर्मोल्लङ्घनका लाञ्छन कैसे लगाया जा सकता है? श्रीकृष्ण और गोपियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कुकल्पनाएँ उनके दिव्य स्वरूप और दिव्य लीलाके विषयमें अनभिज्ञता ही प्रकट करती हैं।

श्रीमद्भागवतपर, दशम स्कन्धपर और रासपञ्चाध्यायीपर अबतक अनेकों भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं—जिनके लेखकोंमें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य, श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी आदि हैं। उन लोगोंने बड़े विस्तारसे रासलीलाकी महिमा समझायी है। किसीने इसे 'कामपर विजय' बतलाया है, किसीने 'भगवान्‌का दिव्य विहार' बतलाया है और किसीने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है। भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा हैं, आत्माकार वृत्ति श्रीराधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका धाराप्रवाहरूपसे निरन्तर आत्मरमण ही रास है। किसी भी दृष्टिसे देखें, रासलीलाकी महिमा अधिकाधिक प्रकट होती है।

परंतु इससे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि श्रीमद्भागवतमें

वर्णित रास या रमण-प्रसङ्ग केवल रूपक या कल्पनामात्र है। वह सर्वथा सत्य है और जैसा वर्णन है, वैसा ही मिलन-विलासादिरूप शृङ्गारका रसास्वादन भी हुआ था। भेद इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री-पुरुषोंका मिलन न था। उसके नायक थे सच्चिदानन्दविग्रह, परात्पर-तत्त्व, पूर्णतम स्वाधीन और निरङ्कुश स्वेच्छाविहारी गोपीनाथ भगवान् नन्दनन्दन, एवं नायिका थीं स्वयं ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाजी और उनकी कायव्यूहरूपा, उनकी घनीभूत मूर्तियाँ श्रीगोपीजन। अतएव इनकी यह लीला अप्राकृत थी। सर्वथा मीठी मिश्रीकी अत्यन्त कड़ुए इन्द्रायण (तूँबे)-जैसी कोई आकृति बना ली जाय, जो देखनेमें ठीक तूँबे-जैसी ही मालूम हो, परंतु इससे असलमें वह मिश्रीका तूँबा कड़ुआ थोड़े ही हो जाता है? क्या तूँबेके आकारकी होनेसे ही मिश्रीके स्वाभाविक गुण मधुरताका अभाव हो जाता है? नहीं-नहीं, वह किसी भी आकारमें हो—सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा केवल मिश्री-ही-मिश्री है। बल्कि इसमें लीला-चमत्कारकी बात अवश्य है। लोग समझते हैं कड़ुआ तूँबा और होती है वह मधुर मिश्री। इसी प्रकार अखिलरसामृतसिन्धु सच्चिदानन्दघनविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अन्तरङ्गा अभिन्न-स्वरूपा गोपियोंकी लीला भी देखनेमें कैसी ही क्यों न हो, वस्तुतः वह सच्चिदानन्दमयी ही है। उसमें सांसारिक गंदे कामका कड़ुआ स्वाद है ही नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इस लीलाकी नकल किसीको कभी नहीं करनी चाहिये, करना सम्भव भी नहीं है। मायिक पदार्थोंके द्वारा मायातीत भगवान्का अनुकरण कोई कैसे कर सकता है? कड़ुए तूँबेको चाहे जैसी सुन्दर मिठाईकी आकृति दे दी जाय, उसका कड़ुआपन कभी मिट नहीं सकता। इसीलिये जिन मोहग्रस्त मनुष्योंने श्रीकृष्णकी रास आदि अन्तरङ्ग-लीलाओंका अनुकरण करके नायक-नायिकाका रसास्वादन करना चाहा या चाहते हैं, उनका घोर पतन हुआ है और होगा! श्रीकृष्णकी इन लीलाओंका

अनुकरण तो केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिये शुकदेवजीने रासपञ्चाध्यायीके अन्तमें सबको सावधान करते हुए कह दिया है कि भगवान्‌के उपदेश तो सब मानने चाहिये, परंतु उनके सभी आचरणोंका अनुकरण कभी नहीं करना चाहिये।

यदि यह हठ ही हो कि श्रीकृष्णका चरित्र मानवीय धारणाओं और आदर्शोंके अनुकूल ही होना चाहिये तो इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी अवस्था उस समय दस वर्षके लगभग थी, जैसा कि भागवतमें स्पष्ट वर्णन मिलता है। गाँवोंमें रहनेवाले बहुत-से दस वर्षके बच्चे तो नंगे ही रहते हैं। उन्हें कामवृत्ति और स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। लड़के-लड़की एक साथ खेलते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, त्योहार मनाते हैं, गुड्डई-गुड्डएकी शादी करते हैं, बारात ले जाते हैं और आपसमें भोज-भात भी करते हैं। गाँवके बड़े-बूढ़े लोग बच्चोंका यह मनोरञ्जन देखकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं आता। ऐसे बच्चोंको युवती स्त्रियाँ भी बड़े प्रेमसे देखती हैं, आदर करती हैं, नहलाती हैं, खिलाती हैं। यह तो साधारण बच्चोंकी बात है। श्रीकृष्ण-जैसे असाधारण धी-शक्ति-सम्पन्न बालक, जिनके अनेकों सद्‌गुण बाल्यकालमें ही प्रकट हो चुके थे: जिनकी सम्मति, चातुर्य और शक्तिसे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे व्रजवासियोंने त्राण पाया था: उनके प्रति वहाँकी स्त्रियों, बालिकाओं और बालकोंका कितना आदर रहा होगा— इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनके सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यसे आकृष्ट होकर गाँवकी बालक-बालिकाएँ उनके साथ ही रहती थीं और श्रीकृष्ण भी अपनी मौलिक प्रतिभासे राग, ताल आदि नये-नये ढंगसे उनका मनोरञ्जन करते थे और उन्हें शिक्षा देते थे। ऐसे ही मनोरञ्जनोंमेंसे रासलीला भी एक थी, ऐसा समझना चाहिये। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं, उनकी दृष्टिमें भी यह दोषकी बात नहीं होनी चाहिये। वे

उदारता और बुद्धिमानीके साथ भागवतमें आये हुए 'काम' 'रति' आदि शब्दोंका ठीक वैसा ही अर्थ समझें, जैसा कि उपनिषद् और गीतामें इन शब्दोंका अर्थ होता है। वास्तवमें गोपियोंके परम त्यागमय प्रेमका ही नामान्तर 'काम' है 'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्।' और भगवान् श्रीकृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य क्रीडा ही 'रति' है। 'आत्मनि यो रममाणः' 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्।' इसीलिये इस प्रसङ्गमें स्थान-स्थानपर उनके लिये विभु, परमेश्वर, लक्ष्मीपति, भगवान्, योगेश्वरेश्वर, आत्माराम, मन्मथमन्मथ, 'अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्' आदि पद आये हैं—जिससे किसीको कोई भ्रम न हो जाय।

राजा परीक्षित्ने अपने प्रश्नोंमें जो शङ्काएँ की हैं, उनका उत्तर प्रश्नोंके अनुरूप ही अध्याय २९ के श्लोक १३ से १६ तक और अध्याय ३३ के श्लोक ३० से ३७ तक श्रीशुकदेवजीने दिया है। उस उत्तरसे वे शङ्काएँ तो हट गयी हैं, परंतु भगवान्की दिव्यलीलाका रहस्य नहीं खुलने पाया; सम्भवतः उस रहस्यको गुप्त रखनेके लिये ही ३३ वें अध्यायमें रासलीला-प्रसङ्ग समाप्त कर दिया गया। वस्तुतः इस लीलाके गूढ़ रहस्यकी प्राकृत-जगत्में व्याख्या की भी नहीं जा सकती; क्योंकि यह इस जगत्की क्रीडा ही नहीं है। यह तो उस दिव्य आनन्दमय—रसमय राज्यकी चमत्कारमयी लीला है, जिसके श्रवण और दर्शनके लिये परमहंस मुनिगण भी सदा उत्कण्ठित रहते हैं। कुछ लोग इस लीलाप्रसङ्गको भागवतमें क्षेपक मानते हैं, वे वास्तवमें दुराग्रह करते हैं; क्योंकि प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियोंमें भी यह प्रसङ्ग मिलता है और जरा विचार करके देखनेसे यह सर्वथा सुसंगत और निर्दोष प्रतीत होता है। भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करके ऐसी विमल बुद्धि दें, जिससे हमलोग इसका कुछ रहस्य समझनेमें समर्थ हों।

रासपञ्चाध्यायीके पाठकोंको इतना तो निश्चय रूपसे

अवश्य ही मान लेना चाहिये कि इसमें लौकिक कामगन्ध-के लेशकी भी कल्पना नहीं है। यह विभूतियुक्त दिव्य चिन्मय पूर्णशक्तिके साथ सच्चिदानन्दघन परिपूर्णतम भगवान्का अप्राकृत और अचिन्त्य पवित्रतम प्रेम-रसका महास्वादन है। इसीसे श्रीशुकदेवजीने इस रासलीलाके श्रवण-वर्णनका महान् तथा अपूर्व फल बतलाया है—'हृद्रोग कामका समूल नाश और प्रेमरूपा पराभक्तिकी प्राप्ति' इससे सिद्ध है कि यह दिव्यरसका प्रवाह ही है, इसमें लौकिक कामगाथाका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः

श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः।

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

'व्रजवधुओंके साथ भगवान्की इस रासक्रीड़ाका जो संशयरहित मनसे श्रद्धाके साथ श्रवण और कीर्तन करेगा, वह शीघ्र ही भगवान्की प्रेमा—पराभक्तिको प्राप्त होगा और उसके हृद्रोग—कामका सर्वथा विनाश हो जायगा।'

असलमें भगवान्की इस दिव्यलीलाके वर्णनका यही प्रयोजन है कि जीव गोपियोंके उस अहैतुक प्रेमका, जो श्रीकृष्णको ही सुख पहुँचानेके लिये है, स्मरण करे और उसके द्वारा भगवान्के रसमय दिव्यलीलालोकमें भगवान्के अनन्त प्रेमका अनुभव करे। अतः इस रासपञ्चाध्यायीका अध्ययन करते समय किसी प्रकारकी भी शङ्का न करके इस भावको जगाये रखना चाहिये तथा श्रद्धायुक्त हृदयसे इसे भगवान्की पवित्रतम लीला समझकर ही पढ़ना-सुनना चाहिये।

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

रासपञ्चाध्यायी

पहला अध्याय

श्रीबादरायणिरुवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीबादरायणिः उवाच

भगवान्, अपि, ताः, रात्रीः, शरदोत्फुल्लमल्लिकाः,
वीक्ष्य, रन्तुम्, मनः, चक्रे, योगमायाम्, उपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

भगवान्	= भगवान् (ऐश्वर्य-वीर्यादि छः गुणोंसे युक्त)	**ताः**	= उन
		रात्रीः	= रात्रियोंको
		वीक्ष्य	= देखकर
अपि	= भी	**योगमायाम्**	= योगमायाको
		उपाश्रितः	= प्रकट करके
शरदोत्फुल्ल-मल्लिकाः	= विकसित शारदीय मल्लिकापुष्पोंसे परिशोभित	**रन्तुम्**	= रमण करनेके लिये
		मनः चक्रे	= संकल्प किया

श्रीबादरायणि (व्यासजी) के पुत्र शुकदेवजीने कहा—ऐश्वर्य-वीर्य आदि षड्विध महान् गुणोंसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णने वस्त्रहरणके समय

गोपकुमारियोंको दिये हुए वचनके अनुसार शरत्कालीन विकसित मल्लिका—चमेली आदि पुष्पोंसे परिशोभित उन रात्रियोंको देखकर योगमाया नामक अपनी अचिन्त्य महाशक्तिको प्रकट किया और गोपरमणियोंके साथ विहार करनेकी इच्छा की ॥ १ ॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

तदा, उडुराजः, ककुभः, करैः, मुखम्, प्राच्याः, विलिम्पन्, अरुणेन, शंतमैः, सः, चर्षणीनाम्, उदगात्, शुचः, मृजन्, प्रियः, प्रियायाः, इव, दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥

तदा = तब
(जिस प्रकार)
दीर्घदर्शनः = बहुत दिनोंके पश्चात् दिखायी देनेवाला
प्रियः = प्रिय
प्रियायाः = (अपनी) प्रियाका
(मुखम् शंतमेन करेण अरुणेन विलिम्पन्) = (मुख अपने अत्यन्त सुखद हाथोंद्वारा केसरसे रँग दे,)
इव = उसी प्रकार
प्राच्याः = पूर्व
ककुभः = दिशाके
मुखम् = मुखको
(अपनी)
शंतमैः = अत्यन्त सुखकर
करैः = किरणरूपी हाथके द्वारा
अरुणेन = उदयरागसे
विलिम्पन् = रञ्जित करता हुआ, लाल बनाता हुआ
(तथा)
चर्षणीनाम् = जगत्‌के प्राणियोंका

शुचः	= संताप	सः	= वह (सर्वविदित)
मृजन्	= दूर करता हुआ	उडुराजः	= { ताराओंका राजा (चन्द्रमा)
		उदगात्	= उदय हुआ

जब भगवान्ने विहार करनेकी इच्छा की, तब उसी क्षण—दीर्घ प्रवासके पश्चात् घरमें आया हुआ प्रियतम जैसे अपने अत्यन्त सुखद हाथोंसे अपनी प्रेयसीका मुख-कमल अरुणवर्ण केसरसे रँग दे, वैसे ही नक्षत्रपति चन्द्रमाने गगन-मण्डलमें उदित होकर अपने सुखमय सुस्निग्ध किरणरूपी कर-कमलोंद्वारा पूर्वदिशारूप वधूका मुख अरुण वर्ण केसरसे रँग दिया। इससे जगत्के प्राणियोंका शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे उत्पन्न संताप दूर हो गया ॥ २ ॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा, कुमुद्वन्तम्, अखण्डमण्डलम्, रमाननाभम्, नवकुङ्कुमारुणम्, वनम्, च, तत्कोमलगोभिः, अञ्जितम्, जगौ, कलम्, वामदृशाम्, मनोहरम् ॥ ३ ॥

फिर—

रमाननाभम्	= { लक्ष्मीके मुख-मण्डलकी शोभा धारण करनेवाले	नवकुङ्कुमारुणम्	= { नवकुङ्कुमकी भाँति अरुण-वर्ण
		अखण्डमण्डलम्	= पूर्ण प्रकाशयुक्त

कुमुद्वन्तम् = चन्द्रमाको
च = तथा
तत्कोमलगोभिः = उस (चन्द्र) की कोमल किरणोंसे
अञ्जितम् = उद्भासित
वनम् = वनको
दृष्ट्वा = देखकर

(श्रीकृष्णने)
वामदृशाम् = सुन्दर नेत्रोंवाली व्रजसुन्दरियोंका
मनोहरम् = मन हर लेनेवाला
कलम् = मधुर (सुललित स्वरसे)
जगौ = गायन (वेणुवादन) किया

रासलीलाके इच्छुक भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि कुमुदिनीको विकसित करनेवाला पूर्णचन्द्र आकाश-मण्डलमें उदित हो गया है, लक्ष्मीजीके मुखकमलकी भाँति उसकी किरणप्रभा सुशोभित है तथा नवीन कुङ्कुमके समान वह अरुणवर्ण हो रहा है और उसकी कोमल किरणोंसे समस्त वन प्रकाशित एवं सुरञ्जित हो उठा है, तब इसी समयको रासक्रीड़ाके लिये उपयुक्त दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूर्ण सामग्रीसे युक्त समझकर उन्होंने सुन्दर नेत्रोंवाली व्रजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाला सुललित स्वरोंमें मधुर मुरलीका वादन किया ॥ ३ ॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥ ४ ॥

निशम्य, गीतम्, तत्, अनङ्गवर्धनम्, व्रजस्त्रियः, कृष्णगृहीतमानसाः, आजग्मुः, अन्योन्यम्, अलक्षितोद्यमाः, सः, यत्र, कान्तः, जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥

तत्	= उस		अलक्षितोद्यमाः	= (प्रियतमके समीप) गमनोद्योगको न जानती हुई
अनङ्गवर्धनम्	= प्रेमवर्द्धन करनेवाले			
गीतम्	= (वेणु-) गीतको		जवलोलकुण्डलाः	= (द्रुतगतिके कारण) हिलते हुए कर्ण-कुण्डलोंसे विभूषित होकर
निशम्य	= सुनकर			
कृष्णगृहीतमानसाः	= श्रीकृष्णके द्वारा (पहलेसे ही) आकृष्ट चित्तवाली			(वहाँ)
			आजग्मुः	= चली आयीं,
			यत्र	= जहाँ
			सः	= वे
व्रजस्त्रियः	= व्रजसुन्दरियाँ		कान्तः	= कान्त (प्रियतम श्रीकृष्ण)
अन्योन्यम्	= परस्पर—एक दूसरीके			(थे)

व्रजसुन्दरियोंका मन तो पहलेसे ही श्यामसुन्दरने अपने वशमें कर रखा था। अब उस मिलन-लालसा—प्रेम बढ़ानेवाले वेणुगीतको सुनकर तो वे सर्वथा विमुग्ध हो गयीं। उनकी भय, संकोच, मर्यादा, धैर्य आदि सभी वृत्तियाँ विलुप्त हो गयीं और वे जहाँ प्रियतम मुरली बजा रहे थे, वहाँ शीघ्रतासे जा पहुँचीं। उनमें किसीने भी परस्पर किसीको जानेकी सूचना-तक नहीं दी। बड़े वेगसे चलनेके कारण उस समय उनके कानोंके कुण्डल नाच रहे थे॥ ४॥

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥ ५॥

दुहन्त्यः, अभिययुः, काः, चित्, दोहम्, हित्वा, समुत्सुकाः, पयः, अधिश्रित्य, संयावम्, अनुद्वास्य, अपराः, ययुः॥ ५॥

समुत्सुकाः = (श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये सदा) परम उत्सुक

काः चित् = कुछ (गोपियाँ) तो

दुहन्त्यः = दूध दुहती हुई (बीचमें ही)

दोहम् = दुहना

हित्वा = छोड़कर

अभियुः = वेणुनादकी ओर लक्ष्य करके चली गयीं

(काश्चित्) = कुछ

पयः = दूधको

अधिश्रित्य = चूल्हेपर रखकर (ही)

(अभियुः) = उसी ओर चल पड़ीं

अपराः = कुछ अन्य (गोपिकाएँ)

संयावम् = हलुआ (तैयार होनेपर भी, चूल्हेसे)

अनुद्वास्य = उतारे बिना ही

ययुः = चली गयीं

श्रीकृष्णका वंशीनाद सुनते ही—प्रियतम भगवान्‌का आह्वान सुनते ही उनकी ऐसी दशा हुई कि श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये सदा ही समुत्सुक रहनेवाली कुछ गोपियाँ जो दूध दुह रही थीं, वे दुहना बीचमें ही छोड़कर चल दीं। कुछ चूल्हेपर दूध औटा रही थीं, वे दूध उफनता हुआ छोड़कर तथा कुछ दूसरी गोपियाँ हलुआ पका रही थीं, वे तैयार हुए हलुएको चूल्हेसे बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चली गयीं ॥ ५ ॥

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥

परिवेषयन्त्यः, तत्, हित्वा, पाययन्त्यः, शिशून्, पयः, शुश्रूषन्त्यः, पतीन्, काः, चित्, अश्नन्त्यः, अपास्य, भोजनम् ॥ ६ ॥

(कुछ)

परिवेषयन्त्यः = परोसती हुई

(अपना)

तत् = वह (परोसना)

हित्वा	= छोड़कर (चली गयीं,) (कुछ)	पतीन्	= पतियोंकी
शिशून्	= बच्चोंको	शुश्रूषन्त्यः	= सेवा करती हुई (सेवा छोड़कर चली गयीं,) (कुछ)
पयः	= दूध	अश्नन्त्यः	= भोजन करती हुई
पाययन्त्यः	= पिलाती हुई (पिलाना छोड़कर चली गयीं,)	भोजनम्	= भोजन
काः चित्	= कुछ तो (अपने)	अपास्य	= छोड़कर (चल पड़ीं)

कुछ अपने पति-पुत्रादिको भोजन परोस रही थीं, वे परोसना छोड़कर; कुछ छोटे बालकोंको दूध पिला रही थीं, वे दूध पिलाना छोड़कर चल दीं। कुछ अपने पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं, वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और कुछ स्वयं भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना छोड़कर प्रियतम श्रीकृष्णके पास चल पड़ीं ॥ ६ ॥

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥

लिम्पन्त्यः, प्रमृजन्त्यः, अन्याः, अञ्जन्त्यः, काः, च, लोचने, व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः, काः, चित्, कृष्णान्तिकम्, ययुः ॥ ७ ॥

अन्याः	= (कुछ) दूसरी	प्रमृजन्त्यः	= उबटन आदि लगाती हुई (उबटना छोड़कर)
लिम्पन्त्यः	= अङ्गराग लगाती हुई (उसे छोड़कर) (कुछ)	च	= और
		काः	= कुछ
		लोचने	= नेत्र

अञ्जन्त्यः = आँजती हुई (अञ्जन लगाना छोड़कर चल पड़ीं) (तथा)
काः चित् = कुछ (गोपिकाएँ) तो
व्यत्यस्त-वस्त्राभरणाः = उलटे-सीधे वस्त्र-आभूषण पहनकर (विचित्र शृङ्गार किये)
कृष्णान्तिकम् = श्रीकृष्णके समीप
ययुः = चली गयीं

कुछ दूसरी गोपियाँ अपने शरीरमें अङ्गराग—केसर-चन्दनादि लगा रही थीं, वे उसे छोड़कर, कुछ उबटन लगा रही थीं, वे उबटना छोड़कर और कुछ आँखोंमें अञ्जन लगा रही थीं, वे अञ्जन लगाना छोड़कर चल दीं। कुछ गोपाङ्गनाएँ वस्त्र-अलंकार पहन रही थीं, वे उलटे-पलटे वस्त्राभूषण धारणकर—जैसे ओढ़नीको कमरमें बाँधकर, लहँगा ओढ़कर, गलेका हार कमरमें पहनकर और करधनीको गलेमें डालकर—प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये पागलकी तरह उनके पास दौड़ पड़ीं ॥ ७ ॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।
गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥

ताः, वार्यमाणाः, पतिभिः, पितृभिः, भ्रातृबन्धुभिः, गोविन्दापहृतात्मानः, न, न्यवर्तन्त, मोहिताः ॥ ८ ॥

गोविन्दा-पहृतात्मानः = श्रीगोविन्दके द्वारा हरे हुए अन्तः-करणवाली (एवं इसीलिये)
मोहिताः = विवेकशून्य हुई
ताः = वे (गोपियाँ)
पतिभिः = अपने पति,
पितृभिः = पिता (अथवा)
भ्रातृबन्धुभिः = भाई-बन्धुओंके द्वारा
वार्यमाणाः = रोकी जानेपर भी
न = नहीं
न्यवर्तन्त = लौटीं

श्रीगोपाङ्गनाओंका आत्मा—मन श्रीगोविन्दके द्वारा हर लिया गया था; इसलिये वे ऐसी सर्वथा मोहित—बाह्यविवेकसे शून्य हो गयीं कि अपने पति, पिता तथा भाई-बन्धुओंके द्वारा रोकी जानेपर भी मुड़ीं नहीं। वे अपने-आपको भूलकर श्रीकृष्ण-सङ्गकी प्राप्तिके लिये दौड़ पड़ीं ॥ ८ ॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः ।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

अन्तर्गृहगताः, काः, चित्, गोप्यः, अलब्धविनिर्गमाः,
कृष्णम्, तद्भावनायुक्ताः, दध्युः, मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥

अन्तर्गृहगताः = घरके भीतर गयी हुई
(तथा पतियोंके द्वारा द्वार बंद कर दिये जानेके कारण किसी भी प्रकार)
अलब्धविनिर्गमाः = बाहर निकलनेका मार्ग नहीं पा सकनेवाली
काः चित् = कुछ
गोप्यः = गोपियाँ
तद्भावनायुक्ताः = उन (प्रियतम) की भावनासे भावित हुई
मीलितलोचनाः = नेत्र बंद किये
(वहींसे)
कृष्णम् = श्रीकृष्णका
दध्युः = ध्यान करने लगीं

श्रीगोपाङ्गनाएँ दो प्रकारकी थीं—नित्यसिद्धा और साधनसिद्धा। श्रीराधा तो भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति ही थीं। ललिता, विशाखा, रूपमञ्जरी, अनङ्गमञ्जरी आदि सखी-सहचरी नित्यसिद्धा थीं। उन्हें तो कोई रोक ही नहीं सकता था। दण्डकारण्यवासी महर्षि आदि जो गोपीदेहको प्राप्त थे, वे साधनसिद्धा गोपियाँ थीं। उनमेंसे कुछ गोपाङ्गनाओंकी साधना अभी पूर्ण नहीं हुई थी, इसलिये उनकी श्रीकृष्णके मिलनकी रीति दूसरी थी। अतएव वे उस समय घरके भीतर गयी हुई थीं। पतियोंने घरोंके दरवाजे

बंद कर दिये; इसलिये उनको बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब वे आँखें मूँदकर उन प्रियतम श्रीकृष्णकी भावनासे भावित होकर बड़ी तन्मयतासे उनके सौन्दर्य-माधुर्य और उनकी मधुरतम लीलाओंका ध्यान करने लगीं ॥ ९ ॥

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥
तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः, ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेष-निर्वृत्या, क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥
तम्, एव, परमात्मानम्, जारबुद्ध्या, अपि, संगताः,
जहुः, गुणमयम्, देहम्, सद्यः, प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥

फिर तो इनका भी समस्त व्यवधान दूर हो गया——

दुस्सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः	= (श्रीकृष्णके साक्षात् मिलनमें बाधा पड़ते ही उसी क्षण जिनमें विरहाग्नि धधक उठी और उस) दुस्सह श्रीकृष्ण विरहकी तीव्र ज्वालासे जिनके समस्त अशुभ धुल गये		(तथा साथ ही)
		ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या	= ध्यानमें उतरे हुए अच्युत (श्री-कृष्ण) के आलिङ्गनजनित आनन्दके द्वारा
		क्षीणमङ्गलाः	= जिनके समस्त शुभ प्रारब्ध(भी) क्षीण हो गये,
			(उन गोपियोंने)
		तम् एव	= उन्हीं

परमात्मानम्	= परमात्मा (श्रीकृष्ण)को	सद्यः	= उसी क्षण
जारबुद्ध्या	= पर-पुरुषज्ञानसे	गुणमयम्	= गुणमय (प्राकृत)
अपि	= भी (केवल ध्यानमें ही)	देहम्	= शरीरको
संगताः	= प्राप्तकर	जहुः	= छोड़ दिया (और वे परमात्मा श्रीकृष्णसे जा मिलीं)
प्रक्षीण-बन्धनाः	= समस्त बन्धनों-से रहित होकर		

परम प्रियतम श्रीकृष्णके साक्षात् मिलनेमें जब यों बाधा पड़ गयी, तब उसी क्षण उनके हृदयोंमें असह्य विरहकी तीव्र ज्वाला धधक उठी— इतनी भयानक जलन हुई कि उनके अंदर अशुभ संस्कारोंका जो कुछ लेशमात्र शेष था, वह सारा भस्म हो गया। फिर तुरंत ही वे श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हो गयीं। ध्यानमें प्राप्त हुए श्रीकृष्णके आलिङ्गनसे उन्हें इतना सुख मिला कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार भी एक ही साथ समूल नष्ट हो गये। यद्यपि गोपियोंने उस समय उन श्रीकृष्णको जार-भावसे ही केवल ध्यानमें प्राप्त किया था, फिर भी वे थे तो साक्षात् परमात्मा ही, चाहे किसी भी भावसे उनका आलिङ्गन प्राप्त हुआ हो; अतएव उन्होंने पाप और पुण्यरूप बन्धनसे रहित होकर उसी क्षण प्राकृत (हाड़-मांससे बने) शरीरको छोड़ दिया और भगवान्‌की लीलामें प्रवेश करने योग्य दिव्य अप्राकृत देहको प्राप्तकर वे प्रियतम श्रीकृष्णसे जा मिलीं॥ १०-११॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम्॥१२॥

राजा उवाच

कृष्णम्, विदुः, परम्, कान्तम्, न, तु, ब्रह्मतया, मुने, गुणप्रवाहोपरमः, तासाम्, गुणधियाम्, कथम्॥१२॥

महाराज (परीक्षित) बोले—

मुने = हे (श्रीकृष्णलीला-) मनन-परायण शुकदेवजी !	(अनुभव करती थीं)
(गोपियाँ तो)	(फिर)
कृष्णम् = श्रीकृष्णको	**गुणधियाम्** = (श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य आदि) गुणोंमें ही बुद्धि रखनेवाली
परम् = केवल	**तासाम्** = उन (गोपियों) का
कान्तम् = प्रियतम (रूपसे)	**गुणप्रवाहोपरमः** = (अभी आपके श्रीमुखसे वर्णित) गुणमय देहादिरूप प्रवाहकी निवृत्ति
विदुः = जानती थीं	**कथम्** = कैसे
ब्रह्मतया = परब्रह्मरूपसे (तो)	(हो गयी)
न तु = नहीं ही	

महाराज परीक्षित्ने पूछा—श्रीकृष्णलीलामाधुरीका नित्य मनन करनेवाले श्रीशुकदेवजी ! गोपियाँ तो श्रीकृष्णको केवल परम प्रियतमरूपसे ही जानती थीं; वे साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसा अनुभव तो वे करती नहीं थीं । उनकी बुद्धि तो श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य आदि गुणोंमें ही लगी हुई थी । ऐसी स्थितिमें वे त्रिगुणमय देहादि संसारके प्रवाहसे मुक्त कैसे हो गयीं ? वे संसारसे मुक्त होकर परमात्मा श्रीकृष्णसे कैसे जा मिलीं ? ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

श्रीशुकः उवाच

उक्तम्, पुरस्तात्, एतत्, ते, चैद्यः, सिद्धिम्, यथा, गतः,
द्विषन्, अपि, हृषीकेशम्, किम्, उत, अधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—

एतत्	=यह (बात) (तो)	**अपि**	=भी
ते	=तुम्हें	**चैद्यः**	=चेदिराज शिशुपाल
पुरस्तात्	=पहले (सप्तम स्कन्धमें) ही (मैंने)	**सिद्धिम्**	=(पार्षदगति-रूप) सिद्धिको
उक्तम्	=कह दी थी	**गतः**	=प्राप्त हो गया; (फिर)
यथा	=कि जिस प्रकार	**अधोक्षज-प्रियाः**	=श्रीकृष्णकी प्रिया (गोपियोंके सम्ब-न्धमें तो)
हृषीकेशम्	=सभी इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णके प्रति		
द्विषन्	=(सदा) द्वेष करता हुआ	**किम् उत**	=कहना ही क्या है ?

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! मैं तुमसे पहले ही (सातवें स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल सभी इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष रखनेपर भी प्राकृत शरीरको त्यागकर अप्राकृत पार्षददेहरूप सिद्धिको प्राप्त हो गया था । फिर जो सम्पूर्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत श्रीकृष्णकी प्रिया हैं और उनमें अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उनको प्राप्त कर लें—इसमें कौन आश्चर्यकी बात है ॥ १३ ॥

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४॥

नृणाम्, निःश्रेयसार्थाय, व्यक्तिः, भगवतः, नृप, अव्ययस्य, अप्रमेयस्य, निर्गुणस्य, गुणात्मनः ॥ १४ ॥

नृप = राजन् ! (सुनो,)
नृणाम् = जीवमात्रके
निःश्रेयसार्थाय = कल्याणके लिये
अव्ययस्य = जन्मादि षड्विकारोंसे रहित
अप्रमेयस्य = अपरिच्छिन्न
निर्गुणस्य = (मायिक) गुणोंसे अतीत
गुणात्मनः = गुणोंका नियन्त्रण करनेवाले
भगवतः = भगवान् श्रीकृष्णका
व्यक्तिः = आविर्भाव (होता है)

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण जन्म-मृत्यु आदि षड्विकारोंसे रहित अविनाशी परब्रह्म हैं, वे अपरिच्छिन्न हैं, मायिक गुणोंसे अथवा गुण-गुणी-भावसे रहित हैं और अचिन्त्यानन्त अप्राकृत परमकल्याणरूप दिव्य गुणोंके परम आश्रय तथा सम्पूर्ण गुणोंका नियन्त्रण करनेवाले हैं, वे तो जीवोंके परम कल्याणके लिये ही आविर्भूत होते हैं ॥ १४ ॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥

कामम्, क्रोधम्, भयम्, स्नेहम्, ऐक्यम्, सौहृदम्, एव, च, नित्यम्, हरौ, विदधतः, यान्ति, तन्मयताम्, हि, ते ॥१५॥

इसीलिये—

हरौ = सभी दोषोंको हरनेवाले हरि श्रीकृष्णमें
नित्यम् = सदा
कामम् = काम,
क्रोधम् = क्रोध,
भयम् = भय,
स्नेहम् = स्नेह,

ऐक्यम्	= एकात्मता		करते हैं,)
च	= तथा	ते	= वे
सौहृदम्	= सौहार्द (आदि)	हि	= निश्चय ही (भगवान्में)
एव	= ही	तन्मयताम्	= तन्मयता
विदधतः	= करते हुए (जो जीवन व्यतीत	यान्ति	= प्राप्त कर लेते हैं

इसीलिये जो व्यक्ति किसी भी सम्बन्धसे अपने जीवनको उन सर्व-दोषहारी भगवान्से जोड़ देते हैं, वह सम्बन्ध चाहे सदा कामका हो, क्रोधका हो, भयका हो अथवा स्नेह, एकात्मता या सौहार्दका हो, वे निश्चय ही भगवान्में तन्मय हो जाते हैं ॥ १५ ॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥१६॥

न, च, एवम्, विस्मयः, कार्यः, भवता, भगवति, अजे ,
योगेश्वरेश्वरे, कृष्णे, यतः, एतत्, विमुच्यते ॥ १६ ॥

भवता	= तुम्हें	एवम्	= (उनके सम्पर्क-मात्रसे गोपियोंका गुणमय देहसे सम्बन्ध कैसे छूट गया)इस रूपमें
अजे	= (इन) अजन्मा		
योगेश्वरेश्वरे	= योगेश्वरोंके भी ईश्वर		
भगवति	= समस्त ऐश्वर्य आदिके निकेतन —भगवान्	विस्मयः	= आश्चर्य
कृष्णे	= (नन्दनन्दन) श्रीकृष्णमें	च	= भी
		न	= नहीं

कार्यः	= करना चाहिये; (क्योंकि)	एतत्	= यह (स्थावर आदि समस्त जगत्)
यतः	= श्रीकृष्णके सम्बन्धसे तो		(संसार-बन्धनसे)
		विमुच्यते	= मुक्त हो जाता है।

अतएव तुम-सरीखे भागवतको जन्मादिरहित, योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर, ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यके परम निकेतन भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके सम्बन्धसे केवल परमप्रियतम माननेवाली गोपियोंकी गुणमय देहसे मुक्ति कैसे हो गयी—इस रूपमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। गोपियोंकी तो बात ही क्या, श्रीकृष्णके सम्बन्धसे तो स्थावर आदि समस्त जगत् संसार-बन्धनसे मुक्त हो सकता है॥ १६॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन्॥१७॥

ताः, दृष्ट्वा, अन्तिकम्, आयाताः, भगवान्, व्रजयोषितः, अवदत्, वदताम्, श्रेष्ठः, वाचःपेशैः, विमोहयन्॥ १७॥

वदताम्	= वक्ताओंके	दृष्ट्वा	= देखकर
श्रेष्ठः	= सिरमौर	वाचः-पेशैः	= मोहक वचनोंसे
भगवान्	= भगवान् श्रीकृष्ण		(उन्हें)
ताः	= उन		
व्रजयोषितः	= व्रजरमणियोंको	विमोहयन्	= विमोहित करते हुए
अन्तिकम्	= अपने निकट		
आयाताः	= आयी हुई	अवदत्	= बोले

अस्तु, अब आगे क्या हुआ, यह सुनो ! वक्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णने जब यह देखा कि व्रजसुन्दरियाँ मेरे अत्यन्त समीप आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी मनोहर वाक्चातुरीसे उनको सर्वथा मोहित करते हुए कहा ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

श्रीभगवान् उवाच

स्वागतम्, वः, महाभागाः, प्रियम्, किम्, करवाणि, वः, व्रजस्य, अनामयम्, कच्चित्, ब्रूत, आगमनकारणम् ॥ १८ ॥

श्रीभगवान् बोले—

महाभागाः = महाभागाओ !
वः = तुम्हारा
स्वागतम् = आना बड़ा अच्छा रहा (मैं)
वः = तुमलोगोंका
किम् = कौन-सा
प्रियम् = प्रिय (कार्य)
करवाणि = करूँ (यह आज्ञा करो ।)
व्रजस्य = व्रजकी
कच्चित् = क्या
अनामयम् = कुशल (तो है ?) (मेरे पास)
आगमनकारणम् = आनेका कारण (तो)
ब्रूत = बताओ

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाभाग्यवती गोपियो ! तुम भले आयीं, तुम आज्ञा दो, तुमलोगोंको प्रिय लगनेवाला मैं कौन-सा कार्य करूँ ? व्रजमें सब कुशल-मङ्गल तो है न ? इस समय तुमलोग यहाँ मेरे पास किस प्रयोजनसे पधारीं—यह तो बताओ ॥ १८ ॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥

रजनी, एषा, घोररूपा, घोरसत्त्वनिषेविता,
प्रतियात, व्रजम्, न, इह, स्थेयम्, स्त्रीभिः, सुमध्यमाः ॥ १९ ॥

किंतु तुमलोगोंने इस समय आकर भारी भूल की है—

एषा =यह	(अतएव)
रजनी =रात्रि	**सुमध्यमाः** =सुन्दरियो !
(का समय है और	(तुमलोग)
इसीलिये स्वभावतः)	**व्रजम्** =व्रजको
घोररूपा =भयदायक	(तुरंत)
(है)	**प्रतियात** =लौट जाओ
घोरसत्त्व-निषेविता = (व्याघ्र-सिंह आदि) भयंकर हिंस्र प्राणियोंसे संकुल	**इह** =इस (वनमें)
	स्त्रीभिः =स्त्रियोंको
	न =नहीं
(है)	**स्थेयम्** =ठहरना चाहिये

इस बातको सुनकर गोपियाँ लज्जायुक्त होकर मुस्कराने लगीं, तब उन्हें भय दिखाकर उनके प्रेमकी परीक्षा लेते हुए भगवान्‌ने फिर कहा—अरी सुन्दरियो ! यह रात्रिका समय है; जो स्वभावतः ही बड़ा भयानक है; फिर इस वनमें बाघ-सिंह आदि हिंसक प्राणी भरे हुए हैं। अतः तुम सब तुरंत व्रजको लौट जाओ। रातके समय इस घोर वनमें स्त्रियोंका ठहरना उचित नहीं है ॥ १९ ॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

मातरः, पितरः, पुत्राः, भ्रातरः, पतयः, च, वः, विचिन्वन्ति, हि, अपश्यन्तः, मा, कृढ्वम्, बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥

(तुम्हारे)
मातरः = माता
पितरः = पिता
पुत्राः = पुत्र
भ्रातरः = भाई
च = और
पतयः = पति
(—सभी)
वः = तुम्हें
(घरमें)
अपश्यन्तः = न देखकर
(इधर-उधर)
विचिन्वन्ति = ढूँढ रहे हैं,
हि = ऐसा मेरा अनुमान है
(इसलिये)
बन्धुसाध्वसम् = बन्धुओंके मनमें तुम्हारे अनिष्ट-सम्बन्धी भय
मा = मत
कृढ्वम् = उत्पन्न करो

जब भयका उनपर कोई असर नहीं हुआ, तब भगवान्‌ने उन्हें अपने घरवालोंकी दुश्चिन्ताका स्मरण दिलाया और कहा—देखो, तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति तुम्हें घरमें न देखकर इधर-उधर ढूँढ रहे होंगे। उन आत्मीय स्वजनोंके मनमें यह भय मत उत्पन्न होने दो कि पता नहीं, तुम्हारा क्या अनिष्ट हो रहा होगा ॥ २० ॥

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

दृष्टम्, वनम्, कुसुमितम्, राकेशकररञ्जितम्, यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥

कुसुमितम् = (विविध) कुसुमोंसे परिशोभित

राकेशकर-रञ्जितम् = पूर्ण चन्द्रकी किरणोंसे उद्भासित

(तथा)

यमुना-निललीलैज-त्तरुपल्लव-शोभितम् = यमुना-तटपर बहनेवाले शीतल समीरकी मन्द गतिके कारण नाचते हुए तरु-पल्लवोंसे सुशोभित

वनम् = (इस) वृन्दावन-को भी

दृष्टम् = देख चुकीं

(उपर्युक्त तीन श्लोकोंके द्वारा भगवान्‌ने गोपियोंके अनन्य प्रेम-भावकी परीक्षा की। अनन्य—एकनिष्ठ प्रेम हुए बिना भगवान् कभी प्रेमास्पदरूपसे प्राप्त नहीं होते। जब भगवान्‌की ऐसी बातें सुनकर भी गोपियाँ कुछ बोलीं नहीं तथा प्रणय-कोपके वश होकर दूसरी ओर देखने लगीं, तब भगवान् उन्हें वनशोभाकी बात कहकर सतीरूपसे पतिसेवा करने तथा वात्सल्यभावसे बालक-वत्सोंकी सँभालनेका कर्तव्य दिखाते हुए फिर कहने लगे-)

कदाचित् तुम सब वनकी शोभा देखने आयी होगी तो तुमलोगोंने भाँति-भाँतिके रंगोंवाले परम विचित्र सुगन्धिसे सम्पन्न पुष्पोंसे परिशोभित, पूर्णचन्द्रमाकी किरणप्रभासे प्रभासित तथा यमुनाजलका स्पर्श करके बहने-वाले शीतल पवनकी मन्द-मन्द गतिसे नाचते हुए वृक्षोंके पत्तोंसे विभूषित वृन्दावनको भी देख लिया ॥ २१ ॥

तद् यात माचिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥२२॥

तत्, यात, मा, चिरम्, गोष्ठम्, शुश्रूषध्वम्, पतीन्, सतीः, क्रन्दन्ति, वत्साः, बालाः, च, तान्, पाययत, दुह्यत ॥ २२ ॥

तत्	= इसलिये	वत्साः	= बछड़े
सतीः	= सतियो !	च	= और
मा चिरम्	= अविलम्ब	बालाः	= बच्चे
गोष्ठम्	= गोष्ठको	क्रन्दन्ति	= रो रहे हैं
यात	= चली जाओ (और अपने)	तान्	= उनको
पतीन्	= पतियोंकी	पाययत	= दूध पिलाओ, (तथा बच्चोंके लिये)
शुश्रूषध्वम्	= सेवा करो (देखो, तुम्हारे)	दुह्यत	= दूध भी दुह लो

इसलिये हे सतियो ! अब देर मत करो, बहुत शीघ्र व्रजको लौट जाओ। घर जाकर अपने-अपने पतियोंकी सेवा करो। देखो, तुम्हारे घरके बछड़े और छोटे-छोटे बच्चे, रो रहे हैं, जाकर उन्हें दूध पिलाओ तथा बछड़ोंके लिये गौएँ भी दुहो ॥ २२ ॥

अथवा मदभिस्नेहाद् भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥

अथवा, मदभिस्नेहात्, भवत्यः, यन्त्रिताशयाः, आगताः, हि, उपपन्नम्, वः, प्रीयन्ते, मयि, जन्तवः ॥ २३ ॥

अथवा	= अथवा	(मेरे पास) आगताः	= आयी हो (तो यह)
मदभिस्नेहात्	= मेरे प्रति अतिशय स्नेह-के कारण	वः	= तुम्हारे लिये
यन्त्रिताशयाः	= वशीभूतचित्त हुई	उपपन्नम्	= उचित ही है
भवत्यः	= आपलोग	हि	= क्योंकि

जन्तवः	= सभी प्राणी	प्रीयन्ते	= प्रेम करते हैं (ही)
मयि	= मुझपर		

भगवान्‌की इस बातको सुनकर गोपियोंके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ, तब भगवान् उनको आश्वासन देते हुए सती स्त्रियोंके परमधर्म पतिसेवा तथा जारसेवनके दुष्परिणामका स्मरण कराकर बोले—'अथवा यदि तुमलोग मेरे प्रति अत्यन्त प्रेमपरवश होकर आयी हो तो यह तुम्हारे योग्य ही है; क्योंकि प्राणिमात्र (पशु-पक्षीतक) मुझसे प्रेम करते हैं ॥ २३ ॥

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥

भर्तुः, शुश्रूषणम्, स्त्रीणाम्, परः, धर्मः, हि, अमायया, तद्बन्धूनाम्, च, कल्याण्यः, प्रजानाम्, च, अनुपोषणम् ॥ २४ ॥

फिर भी अपने धर्मकी ओर तुम्हें देखना चाहिये—

हि	= क्योंकि	शुश्रूषणम्	= सेवा
कल्याण्यः	= साध्वियो !	च	= तथा
अमायया	= निष्कपट(शुद्ध) भावसे	प्रजानाम्	= पुत्र-भृत्य आदिका
भर्तुः	= पतिकी	अनुपोषणम्	= लालन-पालन (ही)
च	= और	स्त्रीणाम्	= स्त्रियोंका
तद्बन्धूनाम्	= उनके बन्धुओं (माता-पिता आदि) की	परः	= परम
		धर्मः	= धर्म (है)

परंतु हे कल्याणी सतियो ! यह सब होते हुए भी स्त्रियोंका परम धर्म तो यही है कि वे निष्कपट भावसे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी सेवा करें तथा पुत्र-कन्यादिका और सेवक आदिका पालन-पोषण करें ॥ २४ ॥

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥

दुश्शीलः, दुर्भगः, वृद्धः, जडः, रोगी, अधनः, अपि, वा,
पतिः, स्त्रीभिः, न, हातव्यः, लोकेप्सुभिः, अपातकी ॥ २५ ॥

लोकेप्सुभिः	= लोक-परलोककी इच्छा रखनेवाली	अपि, वा	= अथवा
स्त्रीभिः	= स्त्रियोंको	अधनः	= निर्धन
दुश्शीलः	= दुर्गुणभरे	पतिः	= पति (को भी यदि वह)
दुर्भगः	= बुरे भाग्यवाले	अपातकी	= महापातकसे रहित (है तो)
वृद्धः	= बूढ़े	न	= नहीं
जडः	= मूर्ख	हातव्यः	= छोड़ना चाहिये
रोगी	= रोगी		

जिन स्त्रियोंको इस लोकमें कीर्ति और मृत्युके पश्चात् श्रेष्ठ लोक प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वे दुर्गुणोंसे भरे—बुरे स्वभाववाले, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी एवं निर्धन पतिका भी कभी त्याग न करें, यदि वह महापापी (भगवान्‌का द्रोही) न हो ॥ २५ ॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥२६॥

अस्वर्ग्यम्, अयशस्यम्, च, फल्गु, कृच्छ्रम्, भयावहम्,
जुगुप्सितम्, च, सर्वत्र, औपपत्यम्, कुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥

कुलस्त्रियाः	= कुलवती रमणियों-के लिये (तो)	औपपत्यम्	= परपुरुषसे प्रीति
		अस्वर्ग्यम्	= स्वर्गसे वञ्चित करनेवाली

अयशस्यम्	= यशका अपहरण करनेवाली	च	= तथा
च	= और	सर्वत्र	= (स्वदेश, परदेश, व्यवहार, परमार्थ, इहलोक, परलोक- में) सर्वत्र
फल्गु	= तुच्छ		
कृच्छ्रम्	= कष्टकर		
भयावहम्	= (इस लोकमें स्वजनोंका, परलोक- में नरकका) भय देनेवाली	जुगुप्सितम्	= अत्यन्त निन्दित (है)

अच्छे कुलकी स्त्रियोंके लिये जारपुरुषकी सेवा स्वदेश-परदेश, व्यवहार-परमार्थ, इहलोक-परलोक—सर्वत्र अत्यन्त निन्दनीय है । उसके कारण स्वर्गसे वञ्चित होना पड़ता है, संसारमें अपयश होता है, इस लोकमें स्वजनोंका तथा परलोकमें नरकयन्त्रणाका भय प्राप्त होता है । वह कुकर्म अत्यन्त तुच्छ—क्षणिक सुख देनेवाला है और कष्टदायक है ॥ २६ ॥

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥२७॥

श्रवणात्, दर्शनात्, ध्यानात्, मयि, भावः, अनुकीर्तनात् ,
न, तथा, संनिकर्षेण, प्रतियात, ततः, गृहान् ॥ २७ ॥

श्रवणात्	= (नाम-गुण आदिके) श्रवणसे	अनुकीर्तनात्	= (निरन्तर मेरी) चर्चा करनेसे
		मयि	= मुझमें
दर्शनात्	= (दूरसे ही मुझे) देखनेसे	भावः	= प्रेम (होता है)
		तथा	= वैसा
ध्यानात्	= (निरन्तर मेरे रूप आदिके) चिन्तनसे	संनिकर्षेण	= अत्यन्त समीप रहनेसे

न	= नहीं (होता)		(तुमलोग अपने)
		गृहान्	= घरको
ततः	= इसलिये	प्रतियात	= लौट जाओ

इसपर भी जब गोपियोंको चुप और अपनी अनन्यतापर दृढ़ देखा, तब उपदेश करते हुए बोले—

फिर मेरे नाम-गुण-लीला आदिके श्रवणसे, दूरसे ही मेरा दर्शन करनेसे, निरन्तर मेरे रूपका चिन्तन-ध्यान करनेसे और मेरे नाम-गुणोंकी चर्चासे मेरे प्रति जैसा प्रेम उमड़ता है, वैसा प्रेम अत्यन्त समीप रहनेसे नहीं होता; इसलिये तुमलोग अपने-अपने घर लौट जाओ ॥ २७॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ।
विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८॥

श्रीशुकः उवाच

इति, विप्रियम्, आकर्ण्य, गोप्यः, गोविन्दभाषितम् ,
विषण्णाः, भग्नसंकल्पाः, चिन्ताम्, आपुः, दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—

	(इस प्रकार)	भग्नसंकल्पाः	= भग्नमनोरथ हुई
इति	= उपर्युक्त	गोप्यः	= गोपियाँ
विप्रियम्	= अप्रिय लगनेवाले	दुरत्ययाम्	= अपार
गोविन्द-भाषितम्	= श्रीकृष्ण-वचनको	चिन्ताम्	= अनिष्ट-आशङ्काको
आकर्ण्य	= सुनकर	आपुः	= प्राप्त हुई (अर्थात् चिन्ता-सागरमें निमग्न हो गयीं)
विषण्णाः	= खिन्न (एवं)		

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! गोविन्दकी उपर्युक्त अत्यन्त अप्रिय बातें सुनकर गोपियाँ खिन्न हो गयीं, उनकी आशा टूट गयी और वे भीषण चिन्ताके अथाह समुद्रमें डूब गयीं ॥ २८ ॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् २९

कृत्वा, मुखानि, अव, शुचः, श्वसनेन, शुष्यद्बिम्बाधराणि, चरणेन, भुवम्, लिखन्त्यः, अस्रैः, उपात्तमषिभिः, कुचकुङ्कुमानि, तस्थुः, मृजन्त्यः, उरुदुःखभराः, स्म, तूष्णीम्॥ २९॥

उरुदुःखभराः = अतिशय दुःख-भारसे पीड़ित (व्रज-सुन्दरियाँ)
शुचः = शोकसे (उद्भूत)
श्वसनेन = (उष्ण दीर्घ) श्वासके कारण
शुष्यद्-बिम्बाधराणि = सूखते हुए बिम्बसदृश ओठोंसे युक्त (अपने)
मुखानि = मुखको
अव = नीचे
कृत्वा = करके (तथा)
चरणेन = चरण (के नखों) से
भुवम् = पृथ्वीको
लिखन्त्यः = कुरेदती हुई (एवं)
उपात्तमषिभिः = काजलसे सने हुए
अस्रैः = आँसुओंसे
कुचकुङ्कुमानि = हृदयपर लगे हुए कुङ्कुमको
मृजन्त्यः = धोती हुई
तूष्णीम् = चुपचाप
तस्थुः स्म = खड़ी रह गयीं

उनका हृदय दुःखसे भर गया, उनके लाल-लाल पके हुए बिम्ब-फल-से अधर शोकके कारण चलनेवाले लंबे तथा गरम श्वासोंके तापसे सूख गये, उन्होंने अपने मुख नीचेकी ओर लटका लिये और पैरके नखोंसे वे पृथ्वीको कुरेदने लगीं । उनके नेत्रोंसे काजलसे सने आँसू बह-बहकर वक्षःस्थलपर पहुँच गये और वहाँ लगी हुई केसरको धोने लगे । वे चुपचाप खड़ी रह गयीं, कुछ भी बोल न सकीं ॥ २९ ॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं
कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्
संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥३०॥

प्रेष्ठम्, प्रियेतरम्, इव, प्रतिभाषमाणम्, कृष्णम्, तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः, नेत्रे, विमृज्य, रुदितोपहते, स्म, किंचित्संरम्भगद्गदगिरः, अब्रुवत, अनुरक्ताः ॥ ३० ॥

तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः	= उन (श्रीकृष्ण) के लिये (उनकी सेवाके अतिरिक्त अन्य) समस्त अभिलाषाओंका सर्वथा त्याग कर चुकनेवाली(तथा)	**रुदितोपहते**	= लगातार रोनेके कारण रुँधे हुए अपने
		नेत्रे	= दोनों नेत्रोंको
		विमृज्य	= पोंछकर
अनुरक्ताः	= (एकमात्र उन्हीं-में) अनुराग रखनेवाली (व्रजसुन्दरियाँ)	**किंचित्संरम्भगद्गदगिरः**	= किंचित् (प्रणय-)कोपावेशके कारण गद्गदवाणीसे युक्त होकर

प्रियेतरम्	= अप्रिय (रुखे मनुष्य) की	**प्रेष्ठम्**	= प्रियतम
इव	= भाँति	**कृष्णम्**	= श्रीकृष्णसे
प्रतिभाष-माणम्	= (उपेक्षापूर्ण) वचन बोलनेवाले	**अब्रुवत स्म**	= बोलीं

उन गोपियोंका मन एकमात्र श्रीकृष्णमें ही अनन्य भावसे अनुरक्त था। वे उनके लिये—उनकी सेवाके अतिरिक्त सभी भोगोंका, सभी कामनाओंका सर्वथा त्याग कर चुकी थीं। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णके मुखसे प्रेमशून्य व्यक्तिकी-सी निष्ठुरतासे भरी उपेक्षायुक्त वाणी सुनी, तब उन्हें बड़ी ही मर्मवेदना हुई। रोते-रोते उनकी आँखें रुँध गयीं, फिर उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और पुनः रोती हुई प्रणय-कोपके कारण गद्गदवाणीसे कहने लगीं ॥ ३० ॥

गोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥

गोप्यः ऊचुः

मा, एवम्, विभो, अर्हति, भवान्, गदितुम्, नृशंसम्, संत्यज्य, सर्वविषयान्, तव, पादमूलम्, भक्ताः, भजस्व, दुरवग्रह, मा, त्यज, अस्मान्, देवः, यथा, आदिपुरुषः, भजते, मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥

गोपियाँ बोलीं—

विभो	= हे सर्वसमर्थ !	**भवान्**	= आप
दुरवग्रह	= हे स्वच्छन्द !	**एवम्**	= इस प्रकार

नृशंसम्	= कठोर	आदिपुरुषः	= भगवान्
गदितुम्	= बोलनेके लिये	देवः	= श्रीनारायण
मा अर्हति	= योग्य नहीं हैं (आपको ऐसा कठोर नहीं बोलना चाहिये)	मुमुक्षून्	= संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवालोंका
		यथा	= जिस प्रकार
सर्वविषयान्	= समस्त विषयोंको	भजते	= भजन करते हैं—उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं (उसी प्रकार तुम भी हमलोगोंका)
संत्यज्य	= सर्वथा छोड़कर		
तव	= तुम्हारे		
पादमूलम्	= चरणतलका (ही)		
भक्ताः	= भजन करनेवाली	भजस्व	= भजन करो—तुम्हारी चरण-सेवाकी जो हमारे अंदर वासना है, उसे पूर्ण करो
अस्मान्	= हम सबको		
मा	= मत		
त्यज	= छोड़ो		

गोपियाँ बोलीं—हे सर्वसमर्थ प्रभो ! हमारे प्राणवल्लभ ! हे स्वच्छन्द-विहारी ! आप परम कोमलस्वभाव होकर भी इस प्रकारके निष्ठुरताभरे वचन क्यों बोल रहे हैं ? ऐसा तो आपको नहीं चाहिये । हम धर्म-लज्जा-पति-स्वजनादि समस्त विषयोंको सर्वथा त्यागकर यहाँ आयी हैं । हम तुम्हारे चरणतलोंकी सेविकाएँ हैं । हमलोगोंका परित्याग मत करो । जैसे आदिदेव भगवान् नारायण संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे अंदर जाग्रत् हुई तुम्हारी चरणसेवा-वासनाको पूर्ण करके हमें कृतार्थ करो ॥ ३१ ॥

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥ ३ २॥

यत्, पत्यपत्यसुहृदाम्, अनुवृत्तिः, अङ्ग, स्त्रीणाम्, स्वधर्मः, इति, धर्मविदा, त्वया, उक्तम्, अस्तु, एवम्, एतत्, उपदेशपदे, त्वयि, ईशे, प्रेष्ठः, भवान्, तनुभृताम्, किल, बन्धुः, आत्मा ॥ ३२ ॥

अङ्ग = हे प्यारे !
पत्यपत्यसुहृदाम् = पति, पुत्र एवं (अन्य) स्वजनोंका
अनुवृत्तिः = अनुवर्तन—उनकी यथायोग्य सेवा (ही)
स्त्रीणाम् = स्त्रियोंका
स्वधर्मः = अपना धर्म (है)
इति = यह
यत् = जो (बात)
धर्मविदा = धर्मके जाननेवाले
त्वया = तुमने
उक्तम् = कही
एतत् = यह (तुम्हारा उपदेश-वाक्य)
उपदेशपदे = उपदेश देनेवाले
त्वयि = तुम
ईशे = परमेश्वरके प्रति (ही ठीक)
एवम् = इसी प्रकार (हमारी ओरसे)
अस्तु = (चरितार्थ) हो जाय (क्योंकि)
भवान् = आप
किल = ही (तो)
तनुभृताम् = शरीरधारियोंके
प्रेष्ठः = प्रियतम
बन्धुः = बन्धु (एवं)
आत्मा = आत्मा (हैं)

हे प्यारे ! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो । तुमने पति, पुत्र एवं अन्य स्वजनोंकी यथायोग्य सेवा करना ही स्त्रियोंका अपना धर्म है, जो यह उपदेश दिया, सो तुम्हारा यह उपदेश तुम उपदेश करनेवालेके प्रति ही हमारी ओरसे चरितार्थ हो जाय; क्योंकि तुम ईश्वर हो--नहीं,नहीं तुम्ही तो प्राणिमात्रके प्रियतम, बन्धु और आत्मा हो । अर्थात् पति-पुत्रादिमें जब तुम्हीं आत्मारूपसे स्थित हो, अतः उनकी देहमें भी सेव्य तुम्हीं हो--वे ही तुम जब साक्षात् हमें प्राप्त हो, तब एकमात्र तुम्हारी सेवा ही उन सबकी सेवा है; तुम्हारे उपदेशकी सच्ची चरितार्थता तुम्हारी सेवासे ही होती है ॥ ३२ ॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥३३॥

कुर्वन्ति, हि, त्वयि, रतिम्, कुशलाः, स्वे, आत्मन्, नित्यप्रिये, पतिसुतादिभिः, आर्तिदैः, किम्, तत्, नः, प्रसीद, परमेश्वर, मा, स्म, छिन्द्याः, आशाम्, भृताम्, त्वयि, चिरात्, अरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥

हि	= यह प्रसिद्ध है कि	**त्वयि**	= तुमसे (ही)
कुशलाः	= (सार-असारको जाननेवाले) चतुर पुरुष	**रतिम्**	= प्रीति
		कुर्वन्ति	= करते हैं
स्वे	= बन्धुरूप,		(वास्तवमें देखें तो)
आत्मन्	= सबके आत्मा,	**आर्तिदैः**	= दुःख देनेवाले
नित्यप्रिये	= सनातन(सहज) प्रेमास्पदरूप	**पतिसुतादिभिः**	= पति-पुत्र आदिसे

किम्	= { प्रयोजन (भी) क्या है ?	चिरात्	= चिरकालसे
तत्	= इसलिये	त्वयि	= तुममें
परमेश्वर	= हे परमेश्वर	धृताम्	= लगी हुई (हमारी)
नः	= हम लोगोंपर	आशाम्	= आशाको
प्रसीद	= प्रसन्न हो जाओ	मा	= मत
अरविन्द-नेत्र	= हे कमलनयन !	छिन्द्याः स्म	= काट डालो

प्रियतम ! तुम्हीं सबके परम बन्धु, आत्मा और नित्यप्रिय सनातन—सहज प्रेमास्पद हो, इसलिये सार-असारको समझनेवाले चतुर पुरुष तुम्हींसे प्रेम करते हैं। संसारके पति-पुत्रादि तो अपनी ममतामें फँसाकर वस्तुतः नाना प्रकारसे दुःख ही, देनेवाले हैं उनसे हमारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? अतएव हे परमेश्वर ! तुम हमलोगोंपर रीझ जाओ। कमलनयन ! चिरकालसे पाली-पोसी हुई हमारी सेवाभिलाषारूप लताको यों निष्ठुरतासे काट न दो ॥

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥३४॥

चित्तम्, सुखेन, भवता, अपहृतम्, गृहेषु, यत्, निर्विशति, उत, करौ, अपि, गृह्यकृत्ये, पादौ, पदम्, न, चलतः, तव, पादमूलात्, यामः, कथम्, व्रजम्, अथो, करवाम, किम्, वा ॥ ३४ ॥

(हमलोगोंका)
यत् = जो
चित्तम् = चित्त
(अबतक)
गृहेषु = गृहमें
निर्विशति = मजेमें लगता था
(उसे)
भवता = आपने
सुखेन = अनायास (ही)
अपहृतम् = लूट लिया
उत = तथा
गृह्यकृत्ये = { गृहकार्यमें लगे हुए
करौ = दोनों हाथोंको
अपि = भी
(आपने अपनी ओर आकर्षित कर लिया)
(तथा आपके द्वारा आकृष्ट ये हमारे)
पादौ = दोनों चरण
(भी)
तव = आपके
पादमूलात् = चरणतलसे
(दूर हटनेके लिये)
पदम् = एक पग
(भी)
न = नहीं
चलतः = चल रहे हैं
अथो = इसलिये
(अब हमलोग)
कथम् = किस प्रकार
व्रजम् = व्रजको
यामः = जायँ
वा = अथवा
(वहाँ जाकर भी)
किम् = क्या
करवाम = करें ?

श्रीकृष्ण ! हमलोगोंका जो चित्त अबतक घरमें मजेमें लग रहा था, उसको आपने सहज ही लूट लिया है तथा घरके कामोंमें लगे हुए हमारे दोनों हाथोंको भी आपने अपनी ओर खींच लिया है। इधर आपके द्वारा खींचे हुए हमारे ये दोनों चरण भी अब आपके चरणतलसे दूर हटकर एक पग भी

जानेके लिये तैयार नहीं हैं। तब आप ही बताओ, हमलोग कैसे व्रजको लौटकर जायँ और वहाँ जाकर भी क्या करें ? ॥ ३४ ॥

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥३५॥

सिञ्च, अङ्ग, नः, त्वदधरामृतपूरकेण, हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्, नो, चेत्, वयम्, विरहजाग्न्युपयुक्तदेहाः, ध्यानेन, याम, पदयोः, पदवीम्, सखे, ते ॥३५॥

अङ्ग	= हे प्यारे	सखे	= हे सखे !
नः	= हमलोगोंकी	विरहजाग्न्युपयुक्तदेहाः	= विरहकी अग्निसे दग्ध हुए शरीरवाली
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्	= (तुम्हारे ही) हास्ययुक्त, दृष्टि एवं मधुर वेणु-नादसे उत्पन्न हुई प्रेमाग्निको	वयम्	= हम सब (तुम्हारे)
त्वदधरामृतपूरकेण	= अपने अधरामृत-के प्रवाहसे	ध्यानेन	= ध्यान (रूप साधन) से ही
		ते	= तुम्हारे
सिञ्च	= सींच दो, बुझा दो	पदयोः	= चरणोंका
नो चेत्	= यदि ऐसा नहीं करते तो	पदवीम्	= सामीप्य
		याम	= प्राप्त करेंगी

प्राणवल्लभ ! तुम्हारी मनोहर मुसकान, प्रेम-सुधामयी दृष्टि और मुरलीकी मधुरतम तानने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेमकी अग्निको धधका दिया है। उसे अपने अधरोंकी सुधा-धाराके प्रवाहसे बुझा दो। ऐसा न करोगे तो प्यारे सखा ! हम सब तुम्हारे विरहकी प्रचण्ड अग्निसे अपने शरीरको जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंके समीप जा पहुँचेंगी॥ ३५ ॥

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया
दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग
स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥३६॥

यर्हि, अम्बुजाक्ष, तव, पादतलम्, रमायाः, दत्तक्षणम्, क्वचित्, अरण्यजनप्रियस्य, अस्प्राक्ष्म, तत्प्रभृति, न, अन्यसमक्षम्, अङ्ग, स्थातुम्, त्वया, अभिरमिताः, बत, पारयामः ॥ ३६ ॥

अम्बुजाक्ष	= हे कमलनयन !	**तव**	= तुम्हारे
यर्हि	= जबसे	**पादतलम्**	= चरणतलका (जो)
क्वचित्	= (गोवर्द्धन आदि कुञ्ज-स्थलमें) कहींपर	**रमायाः**	= श्रीनारायण-पत्नी लक्ष्मीको (भी)
त्वया	= तुम्हारे द्वारा	**दत्तक्षणम्**	= सुख देनेवाले हैं,
अभिरमिताः	= आनन्दित किये जाकर	**अस्प्राक्ष्म**	= स्पर्श किया
(वयम्)	= हम लोगोंने	**तत्प्रभृति**	= तबसे
अरण्यजन-प्रियस्य	= वनवासियोंसे प्यार करनेवाले	**अङ्ग**	= हे प्यारे !
		बत	= ओह !

अन्यसमक्षम्	= (किसी) दूसरेके समीप	न	= नहीं
स्थातुम्	= खड़ी होनेके लिये (भी)	पारयामः	= समर्थ हो रही हैं (सेवा करना तो अत्यन्त दूर है)

हे कमललोचन! तुम्हारे चरणतल वनवासियोंको बड़े प्रिय हैं; और-तो-और नारायणकी प्रिया लक्ष्मीदेवीको भी सुख देनेवाले हैं; उन चरणोंका गोवर्धन आदि कुञ्जस्थलोंमें हमें जिस क्षण स्पर्श प्राप्त हुआ और तुमने हमें सेवाके लिये स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी क्षणसे प्यारे! हम किसी दूसरेके पास एक पलके लिये खड़ी भी नहीं हो सकतीं, पति-पुत्रादिकी सेवा करना तो दूरकी बात है ॥ ३६ ॥

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयास-
स्तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

श्रीः, यत्पदाम्बुजरजः, चकमे, तुलस्या, लब्ध्वा, अपि, वक्षसि, पदम्, किल, भृत्यजुष्टम्, यस्याः, स्ववीक्षणकृते, अन्यसुर-प्रयासः, तद्वत्, वयम्, च, तव, पादरजः, प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

यस्याः	= जिन (लक्ष्मी) के सम्बन्धमें	अन्यसुर-प्रयासः	= अन्य देवताओं-का प्रयास होता है (उन)
स्ववीक्षणकृते	= 'लक्ष्मी मेरी ओर कृपादृष्टि करे' इसके लिये	श्रीः	= लक्ष्मीने (भी)

वक्षसि	= श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर	चकमे	= कामना की (है)
पदम्	= स्थान	वयम्	= हमलोग
लब्ध्वा	= पाकर	च	= भी
अपि	= भी	तद्वत्	= उन्हींकी भाँति
तुलस्या	= तुलसीके सहित	तव	= तुम्हारी
भृत्यजुष्टम्	= भृत्यपरिसेवित	पादरजः	= चरणरजकी
यत्पदाम्बुज-रजः	= तुम्हारी चरण-कमल-रजकी	किल	= निश्चय ही
		प्रपन्नाः	= शरण (हैं)

जिन लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टि प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मादि बड़े-बड़े देवता प्रयास करते रहते हैं, वे लक्ष्मीजी भी श्रीनारायणके वक्षःस्थलपर नित्य स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी तुलसीजीके साथ तुम्हारे चरण-कमलकी उस रजको पानेके लिये लालायित रहती हैं, जो तुम्हारे सेवकोंको सहज प्राप्त है; श्रीकृष्ण ! हमलोग भी उन्हीं की भाँति सर्वत्याग करके तुम्हारी उसी चरणरजकी शरणमें आयी हैं ॥ ३७ ॥

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम-
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥

तत्, नः, प्रसीद, वृजिनार्दन, ते, अङ्घ्रिमूलम्, प्राप्ताः, विसृज्य, वसतीः, त्वदुपासनाशाः, त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनाम्, पुरुषभूषण, देहि, दास्यम् ॥ ३८ ॥

वृजिनार्दन	= हे सर्वदु:खहारिन्!		(अब)
त्वदुपास-नाशाः	= तुम्हारी चरण-सेवाकी आशा रखनेवाली	प्रसीद	= प्रसन्न हो जाओ
	(हम सब अपने)	पुरुषभूषण	= हे पुरुषरत्न !
वसतीः	= घरोंको	त्वत्सुन्दर-स्मितनिरी-क्षणतीव्रकाम-तप्तात्मनाम्	= तुम्हारी सुन्दर मुसुकानयुक्त कटाक्षजनित तीव्र प्रेमके तापसे तप्त हुए मनवाली
विसृज्य	= छोड़कर		
ते	= तुम्हारे		
अङ्घ्रिमूलम्	= चरणोंके निकट	नः	= हम सबको
प्राप्ताः	= आ पहुँची हैं	दास्यम्	= सेवाका अधिकार
तत्	= इसलिये	देहि	= दे दो

भगवन्! तुम सबके सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाले हो, हम सब तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेकी आशासे ही घर-कुटुम्बादि सब कुछ त्यागकर तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आयी हैं; अब तुम हमपर प्रसन्न होओ। हे पुरुषरत्न! तुम्हारी मधुर मुसुकान तथा तिरछी चितवनने हमारे देह तथा मनको प्रेम—मिलन-लालसाकी तीव्र अग्निसे संतप्त कर दिया है, अब तुम हमलोगोंको दासीके रूपमें स्वीकारकर सेवाका सौभाग्य प्रदान करो ॥ ३८ ॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥

वीक्ष्य, अलकावृतमुखम्, तव, कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधम्, हसितावलोकम्, दत्ताभयम्, च, भुजदण्डयुगम्, विलोक्य, वक्षः, श्रियैकरमणम्, च, भवाम, दास्यः ॥ ३९ ॥

कुण्डलश्री-गण्डस्थला-धरसुधम्	= कुण्डलोंकी शोभासे मण्डित कपोलवाले एवं अधरोंमें अमृत धारण करनेवाले	च	= तथा
	(तथा)	दत्ताभयम्	= अभयप्रद
हसिता-वलोकम्	= मधुर मुसुकान-युक्त दृष्टिसे (शोभित)	भुजदण्डयुगम्	= बाहुयुगलको
तव	= तुम्हारे	च	= एवं
अलकावृत-मुखम्	= अलकावलीसे घिरे हुए मुखको	श्रियैकरमणम्	= लक्ष्मीके एक-मात्र रतिप्रद
वीक्ष्य	= निरखकर	वक्षः	= वक्षःस्थलको
		विलोक्य	= निहारकर (हम सब तुम्हारी)
		दास्यः	= दासी
		भवाम	= बन चुकी हैं

प्रियतम ! तुम्हारे मुखकमलको, जो घुँघराली अलकोंके भीतरसे झलक रहा है, जिसके कमनीय कपोलोंपर कुण्डलोंकी छवि छा रही है, जिसके मधुर अधर अमृतमय हैं तथा जो हृदयको हर लेनेवाली तिरछी चितवन तथा मधुर मुसकानसे समन्वित है, निरखकर तथा अभयदान देनेवाली दोनों भुजाओं-को एवं सौन्दर्यकी एकमात्र मूर्ति श्रीलक्ष्मीजीके नित्य रतिप्रद वक्षःस्थलको निहारकर हम सब तुम्हारी सदाके लिये बिना मोलकी दासी बन चुकी हैं ॥ ३९ ॥

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन

सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥४०॥

का, स्त्री, अङ्ग, ते, कलपदायतमूर्च्छितेन, सम्मोहिता, आर्यचरितात्, न, चलेत्, त्रिलोक्याम्, त्रैलोक्यसौभगम्, इदम्, च, निरीक्ष्य, रूपम्, यत्, गोद्विजद्रुममृगाः, पुलकानि, अबिभ्रन्॥

अङ्ग	= हे प्यारे !	सम्मोहिता	= सर्वथा मोहित हुई
त्रिलोक्याम्	= (पृथ्वी आदि) तीनों लोकोंमें (ऐसी)	आर्यचरितात्	= अपने धर्मसे
का	= कौन (सी)	न चलेत्	= विचलित न हो जाय। (अरे ! स्त्रियोंकी बात दूर रहे, तुम्हारा यह वंशीगान एवं रूप इतना मोहक है)
स्त्री	= स्त्री (है जो)		
ते	= तुम्हारे		
कलपदायतमूर्च्छितेन	= सुन्दर पदावली, दीर्घ स्वर एवं आलापभेद-वाले (वेणु-) गानसे	यत्	= कि (इनसे तो)
च	= तथा		
त्रैलोक्यसौभगम्	= त्रिभुवनके सौभाग्यरूप	गोद्विजद्रुममृगाः	= गाय, पक्षी, वृक्ष, एवं मृगगण (तक)ने
इदम्	= इस		
रूपम्	= रूपको	पुलकानि	= पुलकावली
निरीक्ष्य	= देखकर	अबिभ्रन्	= धारण कर ली है

प्रियतम ! तीनों लोकोंमें ऐसी कौन-सी रमणी है, जो तुम्हारे मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोहक्रमसे विभिन्न प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे समन्वित मुरली-संगीतको सुनकर तथा त्रिभुवनके सौभाग्यरूप इस त्रिभङ्ग-ललित श्यामसुन्दर-रूपको देखकर सर्वथा मोहित हो अपनी आर्यमर्यादासे विचलित न हो जाय। स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है, तुम्हारा त्रिभुवन-मन-मोहन रूप तथा मुरली-संगीत ऐसा मोहक है कि इसे देख-सुनकर गौ, पक्षी, वृक्ष और मृग आदि प्राणी भी परमानन्दसे पुलकित हो गये हैं ॥ ४० ॥

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम्॥ ४१॥

व्यक्तम्, भवान्, व्रजभयार्तिहरः, अभिजातः, देवः, यथा, आदिपुरुषः, सुरलोकगोप्ता, तत्, नः, निधेहि, करपङ्कजम्, आर्तबन्धो, तप्तस्तनेषु, च, शिरस्सु, च, किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥

आर्तबन्धो	= हे दुखियोंके बन्धु !	व्रज-भयार्तिहरः	= व्रजके भय एवं दुःखको हरनेवाले
आदिपुरुषः	= भगवान्	अभिजातः	= आविर्भूत हुए हैं, (यह बात व्रजमें)
देवः	= श्रीनारायण देव		
यथा	= जिस प्रकार	व्यक्तम्	= प्रसिद्ध है
सुरलोकगोप्ता	= सुरलोकके रक्षक (हैं)	तत्	= इसलिये
	(उसी प्रकार)	नः	= हम
भवान्	= आप	किंकरीणाम्	= दासियोंके

तप्तस्तनेषु	= जलते हुए वक्षःस्थलोंपर	च	= भी
			(अपना)
च	= और	करपङ्कजम्	= कर-कमल
शिरस्सु	= मस्तकोंपर	निधेहि	= रख दें

दयामय ! आप आर्तोंके बन्धु हैं और यह प्रसिद्ध है कि जिस प्रकार आदिदेव भगवान् श्रीनारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी व्रजमण्डलके भयको दूर करनेके लिये ही प्रकट हुए हैं। हम भी आपके मिलन-मनोरथकी अग्निसे संतप्त, अत्यन्त आर्त हैं। अतएव आप हम किंकरियोंके वक्षःस्थलोंपर और सिरपर अपने कमल-कोमल हाथ रखकर हमें दुःखमुक्त कर दें ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥

श्रीशुक उवाच

इति, विक्लवितम्, तासाम्, श्रुत्वा, योगेश्वरेश्वरः,
प्रहस्य, सदयम्, गोपीः, आत्मारामः, अपि, अरीरमत् ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—

	(राजन्! फिर तो)	तासाम्	= उन व्रज-सुन्दरियोंके
योगेश्वरेश्वरः	= योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्ण	इति	= इस प्रकारके
आत्मारामः	= आत्माराम (होनेपर)	विक्लवितम्	= विलाप-वचनको
अपि	= भी	श्रुत्वा	= सुनकर

प्रहस्य	= (उनपर प्रसन्न होनेके कारण) शुद्ध मनसे हँसकर	गोपीः	= गोपियोंके साथ
सदयम्	= करुणावश	अरीरमत्	= रमण करने लगे—गोपियोंको अपना स्वरूपभूत आनन्द देने लगे

श्रीशुकदेवजी बोले—परीक्षित् ! सनकादि-शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर, नित्य आत्मस्वरूपमें रमण करनेवाले भगवान्‌ने जब व्रजगोपियोंकी इस प्रकार मार्मिक व्यथा और व्याकुलतासे पूर्ण वाणीको सुना, तब उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया और शुद्ध मनसे हँसकर वे अपने कर-कमलोंसे उनके आँसू पोंछकर उनके साथ विलास-विहार करने लगे—उन्हें अपना स्वरूपभूत आनन्द देने लगे ॥ ४२ ॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः
प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।
उदारहासद्विजकुन्ददीधिति-
र्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥

ताभिः, समेताभिः, उदारचेष्टितः, प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः, अच्युतः, उदारहासद्विजकुन्ददीधितिः, व्यरोचत, एणाङ्कः, इव, उडुभिः, वृतः ॥ ४३ ॥

समेताभिः	= अत्यन्त निकट आयी हुई, (अपने)	प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः	= प्रियतमके दर्शनसे प्रसन्न हुए मुखवाली

ताभिः	= (उन) व्रज-सुन्दरियोंसे		(एवं)
वृतः	= परिवेष्टित (होकर)	अच्युतः	= अपने स्वरूपसे कभी च्युत न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण
उदारचेष्टितः	= उदार चेष्टावाले		
	(तथा)	उडुभिः	= ताराओंसे (परिवेष्टित)
उदारहास-द्विजकुन्द-दीधितिः	= मुखपर छाये हुए उदार हास्यसे विकसित दन्त-पंक्तियोंपर खिले हुए कुन्द-पुष्पों-जैसी उज्ज्वल शोभा धारण करनेवाले	एणाङ्कः	= पूर्णचन्द्र (की)
		इव	= भाँति
		व्यरोचत	= सुशोभित हुए

प्रियतमकी अत्यन्त समीपता प्राप्त करनेसे गोपरमणियोंका विरहदुःख तथा प्रणयकोप शान्त हो गया और श्रीकृष्णके दर्शन तथा उनकी प्रेमभरी चितवनके आनन्दसे उनका मुख-कमल प्रफुल्लित हो उठा। वे जब हँसते थे, तब उनकी उज्ज्वल दन्तपंक्तियोंपर कुन्दपुष्पों-जैसी शोभा छा जाती थी। उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो ताराओंसे घिरे हुए पूर्ण चन्द्रमा हों। श्रीकृष्ण इस प्रकार व्रजबालाओंको सुख देकर भी अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूपसे जरा भी च्युत नहीं हुए थे। अर्थात् गोपरमणियों-के साथ उनका यह क्रीडा-विहार सच्चिदानन्दमयी दिव्यलीला थी ॥ ४२ ॥

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ।
मालां बिभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥ ४४ ॥

उपगीयमानः, उद्गायन्, वनिताशतयूथपः, मालाम्, बिभ्रत्, वैजयन्तीम्, व्यचरत्, मण्डयन्, वनम् ॥ ४४ ॥

उपगीयमानः = (व्रजसुन्दरियों-द्वारा) गाये जाते हुए (तथा स्वयं भी)	वैजयन्तीम् = वैजयन्ती
	मालाम् = माला
	बिभ्रत् = धारण किये
उद्गायन् = उच्च स्वरसे गायन करते हुए	वनम् = श्रीवृन्दावनको
वनिताशतयूथपः = व्रजवनिताओंके सैकड़ों यूथके नायक (श्रीकृष्ण)	मण्डयन् = अलंकृत करते हुए
	व्यचरत् = विचरण करने लगे

उस समय व्रजगोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण, रूप तथा लीला आदिका मधुर स्वरसे गान करने लगीं, उधर श्रीकृष्ण भी उच्च स्वरसे उनके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगे । इस प्रकार व्रजसुन्दरियोंके सैकड़ों यूथोंके नायक श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला धारण किये श्रीवृन्दावनकी शोभाको बढ़ाते हुए विचरण करने लगे ॥ ४४ ॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥

नद्याः, पुलिनम्, आविश्य, गोपीभिः, हिमवालुकम्, रेमे, तत्, तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥

फिर—

नद्याः = (यमुना) नदीके	पुलिनम् = पुलिनपर (जो)
तत् = उस	

तरलानन्दकुमुदामोदवायुना	= (नदीकी) तरल तरङ्गोंसे शीतल हुए, (मन्द-मन्द प्रवाहित होनेके कारण) आनन्ददायी एवं कुमुदिनीके सौरभसे सुवासित वायुके द्वारा (परिसेवित)		(तथा)
		हिमवालुकम्	= शीतल वालुकासे युक्त (था)
		आविश्य	= जाकर (अपनी ही स्वरूपभूता)
		गोपीभिः	= गोपियोंके साथ
		रेमे	= रमण करने लगे

तदनन्तर गोपाङ्गनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाके उस परम रमणीय पुलिनपर पदार्पण किया। वह पुलिन यमुनाजीकी तरल तरङ्गोंके स्पर्शसे शीतल हो रहा था और कुमुदिनीकी सुन्दर सुगन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुके द्वारा परिसेवित था। वहाँ बर्फके समान उज्ज्वल तथा शीतल बालू बिछी हुई थी। इस प्रकारके आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान् अपनी स्वरूपभूता गोपियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥ ४५ ॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन्, रतिपतिं रमयांचकार ॥४६॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः, क्ष्वेल्या, अवलोकहसितैः, व्रजसुन्दरीणाम्, उत्तम्भयन्, रतिपतिम्, रमयांचकार ॥ ४६ ॥

बाहुप्रसार-परिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः	= भुजा फैलाकर आलिङ्गन करना, हाथ, अलकावली, जङ्घा, नीवी, वक्षःस्थलका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना—इन समस्त (चेष्टाओं) से (तथा)	अवलोकहसितैः	= कटाक्षनिक्षेप एवं मधुर हास्यके द्वारा
		व्रजसुन्दरीणाम्	= व्रजसुन्दरियोंके
		रतिपतिम्	=काम-विशुद्धप्रेमका
		उत्तम्भयन्	= उद्दीपन करते हुए
		रमयांचकार	= रमण किया (अपने स्वरूपानन्दका वितरणकर व्रजसुन्दरियोंको तृप्त किया)
क्ष्वेल्या	= विविध क्रीडा		

हाथ फैलाकर आलिङ्गन करना, हाथ, चोटी, जङ्घा, लँहगे और वक्षःस्थलका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना, मुसकाना—इन सब चेष्टाओंके द्वारा गोपरमणियोंके दिव्य कामरस—विशुद्ध प्रेमका उद्दीपन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण क्रीड़ाके द्वारा उन्हें आनन्द देने लगे—अपने दिव्य स्वरूपानन्दका वितरणकरके उनको तृप्त करने लगे ॥ ४६ ॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥४७॥

एवम्, भगवतः, कृष्णात्, लब्धमानाः, महात्मनः, आत्मानम्, मेनिरे, स्त्रीणाम्, मानिन्यः, अभ्यधिकम्, भुवि ॥ ४७ ॥

एवं	= इस प्रकार	भगवतः	= स्वयं भगवान्
महात्मनः	= सर्व-नायक-शिरोमणि परमोदार	कृष्णात्	= श्रीकृष्णसे
		लब्धमानाः	= आदर पायी हुई

(व्रजसुन्दरियाँ अब)	स्त्रीणाम् =समस्त स्त्रियोंमें
मानिन्यः ={ प्रणयजनित मान के वशीभूत	आत्मानम् =अपनेको ही
(हो गयीं तथा)	अभ्यधिकम् =सर्वोत्कृष्ट
भुवि =पृथ्वीपर (वर्तमान)	मेनिरे =मानने लगीं

परम उदारशिरोमणि सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णने जब गोपियोंका इस प्रकार सम्मान किया, तब उनके मनमें ऐसा प्रेमाभिमान आ गया कि पृथ्वीभरकी समस्त स्त्रियोंमें हमीं सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४७ ॥

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥

तासाम्, तत्, सौभगमदम्, वीक्ष्य, मानम्, च, केशवः, प्रशमाय, प्रसादाय, तत्र, एव, अन्तरधीयत ॥ ४८ ॥

(तब)	वीक्ष्य =देखकर
तासाम् ={ उन (व्रज- सुन्दरियों) के	केशवः =श्रीकृष्ण (उस गर्वको)
तत् =उस	प्रशमाय =शान्त करनेके लिये (तथा मानका)
सौभगमदम् =सौभाग्यगर्वको	
च =तथा	प्रसादाय ={ प्रसादन करनेके लिये
मानम् ={ (अकस्मात् समुदित) प्रणय- जन्य मानको	तत्र एव =वहीं
	अन्तरधीयत=अन्तर्धान हो गये ।

तब उन व्रजसुन्दरियोंके उस सौभाग्यके गर्वको तथा अकस्मात् उदय हुए प्रणय-अभिमानको देखकर उस गर्वको शान्त करने तथा मानको दूरकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण वहीं उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये । रहे वहीं, पर उनको दीखने बंद हो गये ॥ ४८ ॥

॥ पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥

दूसरा अध्याय

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते, भगवति, सहसा, एव, व्रजाङ्गनाः,
अतप्यन्, तम्, अचक्षाणाः, करिण्यः, इव, यूथपम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—

भगवति = भगवान् श्रीकृष्णके
सहसा = अकस्मात्
एव = ही
अन्तर्हिते = { अन्तर्धान हो जानेपर
तम् = उन्हें
अचक्षाणाः = न देखती हुई
व्रजाङ्गनाः = व्रजसुन्दरियाँ (जैसे)
करिण्यः = हथिनियाँ (अपने)
यूथपम् = { दलके स्वामी (हाथीको) (न देखकर व्याकुल हो जाती हैं)
इव = उस प्रकार (विरहसे)
अतप्यन् = संतप्त हो गयीं

श्रीशुकदेवजी बोले—भगवान् श्रीकृष्ण अकस्मात् अन्तर्धान हो गये, उन्हें न देखकर व्रजसुन्दरियोंकी वैसी ही विकल दशा हो गयी, जैसी दलके स्वामी गजराजको न देखकर हथिनियोंकी हो जाती है। उनके हृदयमें विरहकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी ॥ १ ॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥

गत्या, अनुरागस्मितविभ्रमेक्षितैः, मनोरमालापविहारविभ्रमैः, आक्षिप्तचित्ताः, प्रमदाः, रमापतेः, ताः, ताः, विचेष्टाः, जगृहुः, तदात्मिकाः ॥ २ ॥

रमापतेः = श्रीकृष्णचन्द्रके
गत्या = चलनेकी भङ्गीसे (उनकी)
अनुरागस्मितविभ्रमेक्षितैः = अनुरागपूर्ण मधुर हँसी, अत्यन्त मधुर भ्रू-संचालन आदि चेष्टाओं तथा प्रेमभरी दृष्टिसे,
मनोरमालापविहारविभ्रमैः = मनोरम आलाप एवं सुन्दर लीला-विलाससे
आक्षिप्तचित्ताः = आकृष्टचित्त हुई, (एवं)
तदात्मिकाः = श्रीकृष्णचन्द्रमें ही तन्मय हुई
प्रमदाः = व्रजसुन्दरियाँ (श्रीकृष्णकी)
ताः = उन
ताः = उन
विचेष्टाः = विविध चेष्टाओंका (ही)
जगृहुः = ध्यान करने लगीं

रमापति श्रीकृष्णकी ललित गति, प्रेमभरी सुमधुर मुसकान, अत्यन्त मधुर तिरछी भ्रुकुटी, प्रीतिभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप तथा अन्यान्य विविध लीला-विलास एवं शृङ्गारकी भावभङ्गियोंसे उनका चित्त खिंचकर श्रीकृष्णमें लगा हुआ था। वे व्रजगोपियाँ श्रीकृष्णमें ही तन्मय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी ही विभिन्न चेष्टाओंका ध्यान करने लगीं ॥ २ ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका
न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु, प्रियाः, प्रियस्य, प्रतिरूढमूर्तयः, असौ, अहम्, तु, इति, अबलाः, तदात्मिकाः, न्यवेदिषुः, कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥

प्रियस्य	= प्रियतम (श्रीकृष्णचन्द्रकी)	**तदात्मिकाः**	= उन्हींमें लीन हुई (उनकी)
गतिस्मित-प्रेक्षण-भाषणादिषु	= गति, मन्द हँसी, दृष्टिसंचार, वचन आदिमें (उनकी देहतक डूबने लगी--उन-उन चेष्टाओंका)	**प्रियाः**	= प्रिय
		अबलाः	= व्रजसुन्दरियाँ
		अहम्	= मैं
		तु	= तो
प्रतिरूढ-मूर्तयः	= उनकी देहमें आवेश हो गया (तथा इस तरह)	**असौ**	= वह (श्रीकृष्ण हूँ)
		इति	= इस प्रकार (एक दूसरेको अपना)
कृष्णविहार-विभ्रमाः	= श्रीकृष्णलीलाके (स्मरणजन्य) महान् उन्मादभाव-से उन्मादिनी हुई (तथा)	**न्यवेदिषुः**	= परिचय देने लगीं

इससे प्रियतम श्रीकृष्णकी ललित गति, मधुर हास, मनोरम चितवन, अमृतमय वचन आदिमें वे श्रीकृष्णकी प्यारी व्रजसुन्दरियाँ उनके समान

ही बन गयीं । उनके शरीरमें भी वैसी ही चेष्टाओंका प्राकट्य हो गया और वे श्रीकृष्णलीला-विलासके स्मरणजनित भावसे उन्मादिनी होकर श्रीकृष्ण-स्वरूप ही बन गयीं तथा 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ' परस्पर इस प्रकार अपना परिचय देने लगीं ॥ ३ ॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता
विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहि-
र्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥

गायन्त्यः, उच्चैः, अमुम्, एव, संहताः, विचिक्युः, उन्मत्तक-वत्, वनात्, वनम्, पप्रच्छुः, आकाशवत्, अन्तरम्, बहिः, भूतेषु, सन्तम्, पुरुषम्, वनस्पतीन् ॥ ४ ॥

(पहले तो)
संहताः = सभी मिलकर
अमुम् = उन (श्रीकृष्ण) का
एव = ही
उच्चैः = उच्च (स्वर) से
गायन्त्यः = गीत गाती हुई
(एक)
वनात् = वनसे
(दूसरे)
वनम् = वनमें
उन्मत्तकवत् = पगलीकी भाँति
(उन्हें)
विचिक्युः = ढूँढने लगीं
आकाशवत् = आकाशके समान
भूतेषु = समस्त भूतोंमें
अन्तरम् = भीतर
बहिः = बाहर
(सर्वत्र व्याप्त होकर)
सन्तम् = स्थित रहनेवाले
पुरुषम् = पुरुषकी—श्रीकृष्णचन्द्रकी
(बात)
वनस्पतीन् = वनकी वृक्ष-लताओंके
(निकट जा-जाकर)
पप्रच्छुः = पूछने लगीं

जब उनका यह श्रीकृष्णावेश कुछ शिथिल हुआ, तब भाव बदला और वे सब मिलकर ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णके गुणोंका गान करने लगीं तथा प्रेममें पागल-सी होकर एक वनसे दूसरे वनमें उन्हें ढूँढने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण जड-चेतन सभी पदार्थोंके अंदर और उनके बाहर भी सदा आकाशके सदृश एक रस तथा व्याप्त हैं। वे कहीं गये नहीं थे, परंतु गोपियाँ उन्हें अपने बीचमें न देखकर वनस्पतियोंसे—वृक्ष-लताओंसे उनके समीप जा-जाकर प्रियतमका पता पूछने लगीं ॥ ४ ॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥

दृष्टः, वः, कच्चित्, अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, नः, मनः, नन्दसूनुः, गतः, हृत्वा, प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥

अश्वत्थ	= हे पीपलके वृक्ष!	**हृत्वा**	= चुराकर
प्लक्ष	= हे पाकर!		(कहीं)
न्यग्रोध	= हे वट!	**गतः**	= गये हुए
प्रेमहासा-वलोकनैः	= प्रेम एवं हास्य-समन्वित दृष्टि-संचारसे	**नन्दसूनुः**	= नन्दपुत्र
		वः	= तुम सबोंको
नः	= हमलोगोंका	**दृष्टः**	= दीख पड़े
मनः	= मन	**कच्चित्**	= क्या?

व्रजसुन्दरियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंके पास जाकर उनसे पूछा—'हे पीपल, पाकर, वट! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान तथा चितवनसे हमलोगोंके मन चुराकर कहीं चले गये हैं, क्या तुमलोगोंने उनको देखा है? ॥ ५ ॥

कच्चित् कुरबकाशोकनागपुंनागचम्पकाः।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥६॥

कच्चित्, कुरबकाशोकनागपुंनागचम्पकाः,
रामानुजः, मानिनीनाम्, इतः, दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥

कुरबकाशोक-नागपुंनाग-चम्पकाः	= हे कुरबक! हे अशोक ! हे नाग, पुंनाग चम्पक! (जो)		(वे)
मानिनीनाम्	= मानवती (रमणियों) के	रामानुजः	= बलरामजीके छोटे भाई (श्रीकृष्ण-चन्द्र)
दर्पहरस्मितः	= दर्पको चूर्ण कर देनेवाली मुस्कानसे विभूषित हैं	इतः	= इस ओरसे गये हैं
		कच्चित्	= क्या ?

हे कुरबक ! अशोक ! नागकेशर ! पुंनाग ! चम्पक ! जिनकी मधुरतम मुसकान मात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनी रमणियोंका दर्प चूर्ण हो जाता है, वे बलरामजीके छोटे भाई श्रीकृष्णचन्द्र इधरसे गये हैं क्या ? ॥ ६ ॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥

कच्चित्, तुलसि, कल्याणि, गोविन्दचरणप्रिये,
सह, त्वा, अलिकुलैः, बिभ्रत्, दृष्टः, ते, अतिप्रियः, अच्युतः ॥ ७ ॥

कल्याणि	= हे कल्याणमयी	अलिकुलैः	= भ्रमरसमूहोंके
गोविन्द-चरणप्रिये	= गोविन्दचरणोंको प्यार करनेवाली	सह	= सहित
		त्वा	= तुम्हें
तुलसि	= तुलसी ! (तुमपर उड़ते हुए)		(मालारूपमें हृदयपर)

बिभ्रत्	= धारण किये हुए	**कच्चित्**	= क्या
ते	= तुम्हारे		(तुमने इस ओरसे जाते)
अतिप्रियः	= प्रियतम		
अच्युतः	= अच्युत (श्रीकृष्णचन्द्र) को	**दृष्टः**	= देखा है ?

जब इन पुरुषजातीय वृक्षोंसे उत्तर नहीं मिला, तब उन्होंने स्त्रीजातिके पौधोंसे पूछा—'बहिन तुलसी ! तुम तो कल्याणमयी हो, सबका कल्याण चाहती हो। तुम्हारा श्रीगोविन्दके चरणोंमें बड़ा प्रेम है और वे भी तुमसे प्रेम करते हैं; इसीलिये भ्रमरोंसे घिरी हुई तुम्हारी मालाको सदा हृदयपर धारण करते हैं। उन अपने प्रियतम अच्युत—जो अपने प्रेम-स्वभावसे कभी च्युत नहीं होते—श्यामसुन्दरको क्या तुमने इधरसे जाते देखा है ? ॥ ७ ॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥

मालति, अदर्शि, वः, कच्चित्, मल्लिके, जाति, यूथिके, प्रीतिम्, वः, जनयन्, यातः, करस्पर्शेन, माधवः ॥ ८ ॥

मालति	= हे मालती !	**प्रीतिम्**	= आनन्द
मल्लिके	= हे चमेली !	**जनयन्**	= विधान करते हुए (इस ओरसे)
जाति	= हे जाती !	**यातः**	= गये हुए
यूथिके	= हे जूही ! (तुम्हारे पुष्पोंको चयन करते समय, अपने)	**माधवः**	= माधव
		वः	= तुम सबोंको
करस्पर्शेन	= करस्पर्श (के दान)से	**कच्चित्**	= क्या
वः	= तुमलोगोंका	**अदर्शि**	= दृष्टिगोचर हुए हैं ?

गोपियोंने समझा तुलसी श्रीकृष्णको अति प्यारी है, इसको उनका

अवश्य पता होगा । पर जब उसने भी कोई उत्तर नहीं दिया, तब वे सुगन्धित पुष्पोंवाले पौधोंसे पूछने लगीं—सोचा कि श्रीकृष्णको इनके पुष्प बहुत प्रिय लगते हैं, अतः इनको पता होगा हे मालती ! चमेली ! जाती ! जूही ! तुम्हारे सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंका चयन करते समय अपने कोमल करोंसे स्पर्श करके तुम्हें आनन्द देते हुए क्या हमारे प्रियतम माधवको तुमने इधरसे जाते देखा है ? ॥ ८ ॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः, ये, अन्ये, परार्थभवकाः, यमुनोपकूलाः, शंसन्तु, कृष्णपदवीम्, रहितात्मनाम्, नः ॥ ९ ॥

चूतप्रियाल-पनसा-सन-कोविदार-जम्ब्वर्क-बिल्व-बकुलाम्र-कदम्बनीपाः	= हे रसाल, प्रियाल, पनस, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, वेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब, नीप (एवं)	**यमुनोप-कूलाः**	= यमुना-तीरवासी (तुम हो, उन तुम सबसे प्रार्थना है—)
अन्ये	= अन्य वृक्षो !	**रहिता-त्मनाम्**	= शून्यहृदया
ये	= जो	**नः**	= हम सबोंको
परार्थ-भवकाः	= परोपकारके लिये ही जीवन धारण करनेवाले (तथा)	**कृष्ण-पदवीम्**	= श्रीकृष्णका पता
		शंसन्तु	= बता दो ।

पुष्पलताओंसे भी जब उत्तर नहीं मिला, तब यह सोचकर कि बड़े-छोटे सभी वृक्ष दीन-दुखियोंके उपकारमें ही सदा लगे रहते हैं, हम सब दुःखसंतप्त हैं, अतः इनके स्वभावकी स्मृति कराते हुए इन वृक्षोंसे पूछें, वे उनसे बोलीं—हे रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब, नीप और यमुनातटपर विराजमान अन्यान्य तरुवरो! तुमने तो केवल परोपकारके लिये ही जीवन धारण किया है। हमारा हृदय श्रीकृष्णके बिना सूना हो रहा है; अतएव हम तुमलोगोंसे प्रार्थना करती हैं कि तुम कृपा करके श्रीकृष्णका पता हमें बता दो ॥ ९ ॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा
आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ १० ॥

किम्, ते, कृतम्, क्षिति, तपः, बत, केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा, उत्पुलकिता, अङ्गरुहैः, विभासि, अपि, अङ्घ्रिसम्भवः, उरुक्रमविक्रमात्, वा, आहो, वराहवपुषः, परिरम्भणेन ॥ १० ॥

क्षिति =हे पृथ्वी !
ते =तुम्हारे द्वारा (ऐसा)
किम् =कौन-सा
तपः =तप
कृतम् =आचरित हुआ है (कि जो तुम)
बत =आइ !
केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा =केशवके चरणस्पर्श-जन्य आनन्दकी भागिनी बन गयी। (इसीलिये तुम

आनन्दवश)

अङ्करुहैः = { अङ्गोंपर खड़े हुए तृणाङ्कुरों (के रूप) में

उत्पुलकिता = रोमाञ्चित हुई

विभासि = शोभा पा रही हो (बताओ)

अपि = क्या (तुम्हारा यह आनन्द अभी-अभी श्रीकृष्णके)

अङ्घ्रिसम्भवः = { चरणोंके स्पर्शसे प्रकट हुआ है ?

वा = या

(इससे पूर्व बलिको छलते समय)

उरुक्रमविक्रमात् = { त्रिविक्रम भगवान्‌के चरणनिक्षेप (का स्पर्श पाने) से ?

आहो = अथवा (इससे भी पूर्व तुम्हारे उद्धारके समय)

वराहवपुषः = वाराहमूर्तिके

परिरम्भणेन = आलिङ्गनसे (तुम्हें यह आनन्द मिला है ?)

वृक्षोंसे भी जब कोई उत्तर नहीं मिला, तब उन्मादिनी व्रजसुन्दरियोंने पृथ्वीको सम्बोधन करके कहा—'भगवान्‌की प्रियतमे पृथ्वीदेवि ! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है जो तुम श्रीकृष्णके चरणारविन्दका स्पर्श प्राप्त करके आनन्दसे उत्फुल्ल हो रही हो और तृण-अङ्कुर आदिके रूपमें रोमाञ्चित होकर शोभा पा रही हो ? तुम्हारा यह आनन्दोल्लास अभी-अभी श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है। अथवा बलिको छलते समय वामनावतारमें विराट्‌रूपसे अपने चरणोंके द्वारा उन्होंने तुमको नापा था, उसके कारण है ? या उससे भी पूर्व जब तुम्हारा उद्धार करनेके लिये उन्होंने तुमसे वाराहरूपसे आलिङ्गन किया था, उसके कारण तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है ?' ॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-

स्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।

कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥

अपि, एणपत्नि, उपगतः, प्रियया, इह, गात्रैः, तन्वन्, दृशाम्, सखि, सुनिर्वृतिम्, अच्युतः, वः, कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः, कुन्दस्रजः, कुलपतेः, इह, वाति, गन्धः ॥ ११ ॥

एणपत्नि = हे हरिणि !
सखि = हे सखि !
(अपनी)
प्रियया = प्रियाके सहित
अच्युतः = अच्युत श्रीकृष्णचन्द्र
(अपने सुन्दर)
गात्रैः = अङ्गोंसे
वः = तुमलोगोंके
दृशाम् = नेत्रोंको
सुनिर्वृतिम् = निरतिशय आनन्द
तन्वन् = प्रदान करते हुए
इह = यहाँ (इस वनमें)
अपि = क्या
उपगतः = (तुम्हारे) समीप आये हैं ?
(हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि अवश्य आये हैं; क्योंकि)
इह = इस स्थानपर
कुलपतेः = गोकुलनाथके
(हृदयपर झूलती हुई)
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः = प्रियाके आलिङ्गनके कारण उनके वक्षःस्थलपर लगे हुए कुङ्कुमसे रञ्जित हुई
कुन्दस्रजः = कुन्द कुसुमोंकी मालाकी
गन्धः = गन्ध
वाति = आ रही है

तदनन्तर हरिणियोंकी दृष्टिको प्रसन्न देखकर गोपाङ्गनाओंने सोचा, इन्होंने श्रीकृष्णको देखा होगा और उनसे कहने लगीं—'अरी सखी हरिणियो ! अपने प्रेममय स्वभावमें नित्य स्थित श्यामसुन्दर अपनी प्राण-

प्रियाके साथ अपने मनोहर अङ्गोंके सौन्दर्य-माधुर्यसे तुम्हारे नेत्रोंको निरतिशय आनन्द प्रदान करते हुए तुम्हारे समीपसे तो नहीं गये हैं ? हमें तो ऐसा लगता है, वे यहाँ अवश्य आये हैं; क्योंकि यहाँ गोकुलनाथ (या हमारे गोपीसमुदायके स्वामी) श्रीकृष्णके हृदयपर झूलती हुई उस कुन्द-कुसुमोंकी मालाकी मनोरम सुगन्ध आ रही है, जो उनकी परमप्रेयसीके आलिङ्गनके कारण लगी हुई उसके वक्षःस्थलकी केसरसे अनुरञ्जित रहती है ॥ ११ ॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं
किं वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥१२॥

बाहुम्, प्रियांसे, उपधाय, गृहीतपद्मः, रामानुजः, तुलसिकालिकुलैः, मदान्धैः, अन्वीयमानः, इह, वः, तरवः, प्रणामम् , किम् , वा, अभिनन्दति, चरन्, प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥

तरवः	= हे वृक्षो !
मदान्धैः	= (मालामें पिरोयी हुई तुलसी-मञ्जरीके) मधुपानसे मत्त
तुलसिकालिकुलैः	= तुलसी-वनके भौंरे
अन्वीयमानः	= (जिनके) पीछे-पीछे उड़ रहे हैं, (जो अपने दाहिने हाथमें)
गृहीतपद्मः	= कमलपुष्प धारण किये हुए हैं (वे)
रामानुजः	= बलरामजीके अनुज श्रीकृष्णचन्द्र
प्रियांसे	= प्रियाके कंधेपर (अपनी बायीं)
बाहुम्	= भुजा
उपधाय	= रखकर
इह	= इस वनमें

चरन्	= घूमते हुए (यहाँ आये हैं क्या ?	प्रणामम्	= प्रणामका
(वा)	= तथा (आकर उन्होंने)	अभि-नन्दति	= अभिनन्दन किया है
प्रणयावलोकैः	= सप्रेम दृष्टिसे	किम् वा	= क्या ?
वः	= तुम्हारे		

हरिणियोंको निस्तब्ध देखकर उन्होंने सोचा, एक बार पुनः वृक्षोंसे पूछ देखें; अतः वे बोलीं—'पवित्र तरुवरो ! तुलसी-मञ्जरीके मधुपानसे मत्त हुए भ्रमर जिनके पीछे-पीछे मँडराते चले जा रहे हैं, जो अपने दाहिने हाथमें लीलाकमल धारण किये हुए हैं और बायें हाथको प्रियतमाके कंधेपर रखे हुए हैं, ऐसे श्रीबलरामजीके छोटे भाई हमारे प्रियतम श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए निकले थे क्या ? तुम जो प्रणाम करनेकी तरह झुके हुए हो, सो क्या उन्होंने प्रेमपूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे इस प्रणामका अभिनन्दन किया था ?' ॥ १२ ॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।
नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ १३ ॥

पृच्छत, इमाः, लताः, बाहून्, अपि, आश्लिष्टाः, वनस्पतेः, नूनम्, तत्करजस्पृष्टाः, बिभ्रति, उत्पुलकानि, अहो ॥ १३ ॥

(सखियो !)		लताः	= लताओंसे
वनस्पतेः	= वनस्पतिकी—वृक्षोंकी	अपि	= भी
बाहून्	= भुजाओंको—शाखाओंसे	पृच्छत	= पूछो (देखो इनका भाग्य !)
आश्लिष्टाः	= लिपटी हुई	अहो	= ओह ! (अपने पतिसे आश्लिष्ट रहनेपर भी)
इमाः	= इन		

नूनम्	= निश्चय ही (इन्हें)		(क्योंकि नवाङ्कुरोंके रूपमें ये)
तत्करज-स्पृष्टाः	= उन (श्रीकृष्णचन्द्र) के नखोंका स्पर्श प्राप्त हो गया है;	उत्पुल-कानि	= पुलकावलि
		बिभ्रति	= धारण किये हुए हैं

कुछ गोपियोंने कहा—अरी सखियो ! वृक्षोंसे क्या पूछ रही हो। इन लताओंसे भी पूछो, जो अपने पति वृक्षोंकी भुजाओं—शाखाओंसे लिपटी हुई हैं। पर इनके शरीरमें जो नये-नये अङ्कुरोंके उद्गमरूपमें पुलकावलि छायी हुई है, यह अवश्य ही इनके पति—वृक्षोंसे लिपटी रहनेके कारण नहीं है। यह तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके नखोंके स्पर्शका ही परिणाम है। अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है ! ॥ १३ ॥

इत्युन्मत्तवचोगोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥

इति, उन्मत्तवचोगोप्यः, कृष्णान्वेषणकातराः, लीलाः, भगवतः, ताः, ताः, हि, अनुचक्रुः, तदात्मिकाः ॥१४॥

किंतु राजन् !—

इति	= उपर्युक्त प्रकारसे	कृष्णा-न्वेषण-कातराः	= श्रीकृष्णचन्द्रको ढूँढ़नेमें भी कातर—असमर्थ हो गयीं (तथा असमर्थ होकर पुनः श्रीकृष्णलीलाका गान करने लगीं)
उन्मत्त-वचो-गोप्यः	= उन्मादिनीके समान वचन बोलनेवाली गोपियाँ (अब विरह-दुःखके कारण)		

(साथ ही)	भगवतः = भगवान्‌की
हि = क्योंकि	ताः = उन
तदात्मिकाः = { उनमें तन्मय हो गयी थीं	ताः = उन
	लीलाः = लीलाओंका
(इसलिये)	अनुचक्रुः = { अनुकरण (भी) करने लगीं

परीक्षित्! इस प्रकार पागलोंकी भाँति प्रलाप करती हुई व्रज-सुन्दरियाँ भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढती हुई विरहदुःखके कारण कातर और असमर्थ हो गयीं। तब उनकी कृष्णतन्मयता फिर बढ़ी और वे अपनेको भगवान् श्रीकृष्ण ही मानकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं॥ १४॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहञ्छकटायतीम्॥१५॥

कस्याः, चित्, पूतनायन्त्याः, कृष्णायन्ती, अपिबत्, स्तनम्, तोकायित्वा, रुदती, अन्या, पदा, अहन्, शकटायतीम्॥१५॥

कृष्णायन्ती = { कृष्णका अनुकरण करनेवाली (कोई गोपी)	तोकायित्वा = बालक-सा बनाकर
पूतनायन्त्याः = { पूतनाका भाव दिखानेवाली	रुदती = { बालकके समान रोनेका भाव दिखाकर
कस्याः चित् } = किसी (अन्य) गोपीका	शकटायतीम् = { छकड़ेका अनुकरण करनेवाली किसी गोपीके प्रति
स्तनम् = स्तन	
अपिबत् = पान करने लगी	पदा = चरणसे
अन्या = एक दूसरी (अपनेको)	अहन् = ठोकर दे बैठी

श्रीकृष्णलीलाका अनुकरण करनेवाली एक गोपी पूतना बन गयी, दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी। एक गोपी छकड़ा बन गयी तो दूसरी बालकृष्ण बनकर रोते हुए उसको चरणकी ठोकर मारकर उलट दिया ॥ १५ ॥

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

दैत्यायित्वा, जहार, अन्याम्, एका, कृष्णार्भभावनाम्,
रिङ्गयामास, का, अपि, अङ्घ्री, कर्षन्ती, घोषनिःस्वनैः ॥१६॥

एका = एक (दूसरी गोपी अपनेको)

दैत्यायित्वा = तृणावर्त दैत्यके समान बनाकर

कृष्णार्भभावनाम् = बालकृष्णकी भावना करनेवाली

अन्याम् = दूसरी (गोपी)को

जहार = हर ले चली—हरण करनेका भाव दिखाने लगी (तथा अपनी)

घोषनिःस्वनैः = पायजेब आदिके मधुर शब्दोंसे (श्रीकृष्ण-किङ्किणी-ध्वनिकी कल्पना करके)

का अपि = कोई एक (गोपी) (अपने)

अङ्घ्री = दोनों चरणोंको

कर्षन्ती = भूमिपर घसीटती हुई

रिङ्गयामास = रेंगने लगी—रिङ्गण-लीलाका अनुकरण करने लगी

कोई एक गोपी तृणावर्त दैत्य बन गयी और बालकृष्ण बनी हुई दूसरी गोपीको हरण करनेका भाव दिखाने लगी। किसी गोपीने अपने पैरोंकी पायजेबकी मधुर ध्वनिको श्रीकृष्णकी किङ्किणी-ध्वनि समझकर अपनेको शिशु कृष्ण मान लिया और दोनों चरणोंको भूमिपर घसीट-

घसीटकर रेंगने लगी—भगवान्‌की मधुर बकैयाँ चलनेकी लीलाका अनुकरण करने लगी ॥ १६ ॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायतीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७॥

कृष्णरामायिते, द्वे, तु, गोपायन्त्यः, च, काः, चन, वत्सायतीम्, हन्ति, च, अन्या, तत्र, एका, तु, बकायतीम् ॥ १७॥

द्वे	= दो गोपियाँ	**एका**	= एक (कृष्ण बनी हुई गोपी)
तु	= तो	**तु**	= तो
कृष्ण-रामायिते	= कृष्ण-रामके समान भाव दिखाकर (खेल करने लगीं)	**वत्सा-यतीम्**	= वत्सासुरका भाव दिखानेवाली (अन्य गोपीको)
च	= तथा	**हन्ति**	= मारने चली—वत्सासुर-वधका दृश्य दिखाने लगी
काः चन	= कुछ	**च**	= तथा
गोपा-यन्त्यः	= गोपबालकोंके समान बनकर (क्रीड़ा करने लगीं; तथा कुछ बछड़ोंका अनुकरण करने लगीं)	**अन्या**	= एक दूसरी
तत्र	= वहाँ	**बका-यतीम्**	= बकासुरका अनुकरण करनेवाली (किसी और गोपी) को(चीर डालनेका भाव दिखाने लगी)

दो गोपियाँ श्रीकृष्ण और बलराम बनकर उनके-जैसे खेल करने लगीं। कुछ गोपियाँ गोप-बालकोंके समान बनकर क्रीड़ा करने लगीं, कुछ बछड़ोंका अनुकरण करने लगीं। एक गोपी वत्सासुर बन गयी, दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसे मारनेकी लीला करने लगी। इसी प्रकार एक

गोपी बकासुर बनी और दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसे चीर डालनेका भाव दिखाने लगी ॥ १७ ॥

आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥

आहूय, दूरगाः, यद्वत्, कृष्णः, तम्, अनुकुर्वतीम्, वेणुम्, क्वणन्तीम्, क्रीडन्तीम्, अन्याः, शंसन्ति, साधु, इति ॥ १८ ॥

कृष्णः = श्रीकृष्ण
यद्वत् = जिस प्रकार
दूरगाः = दूर गयी हुई (गायों) को (वंशी बजाकर बुलाते हैं, ठीक उसी प्रकार वंशीनादका दृश्य दिखाकर गायोंको)
आहूय = बुलाकर—बुलाने-का भाव दिखाकर
तम् = श्रीकृष्णका
अनुकुर्वतीम् = अनुकरण करनेवाली
वेणुम् = वंशी
क्वणन्तीम् = बजाने (की मुद्रा धारणकर)
क्रीडन्तीम् = क्रीड़ा करनेवाली (एक गोपीकी लीला देखकर कुछ)
अन्याः = अन्य (गोपियाँ)
साधु = वाह ! वाह ! बहुत सुन्दर !
इति = इस प्रकार (उसकी)
शंसन्ति = प्रशंसा करने लगीं

जिस प्रकार श्रीकृष्ण वनमें दूर गये हुए गाय-बछड़ोंको वंशी बजा-बजाकर बुलाया करते थे, वैसे ही एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर

वंशीध्वनिके द्वारा गायोंको बुलानेका भाव दिखाने लगी। उस गोपीकी इस वंशी बजानेकी लीलाको देखकर दूसरी कुछ गोपियाँ 'वाह-वाह ! तुम बहुत ही मधुर मुरली बजा रहे हो' यों कहकर उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ १८ ॥

कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥

कस्याम्, चित्, स्वभुजम्, न्यस्य, चलन्ती, आह, अपरा, ननु, कृष्णः, अहम्, पश्यत, गतिम्, ललिताम्, इति, तन्मनाः ॥१९॥

तन्मनाः	= श्रीकृष्णचन्द्रमें आविष्टचित्त हुई	**अहम्**	= मैं
		कृष्णः	= कृष्ण हूँ
अपरा	= एक दूसरी (गोपी)		(मेरी)
कस्याम् चित्	= किसी अन्य (गोपी) पर	**ललिताम्**	= सुन्दर
		गतिम्	= चाल (तो)
स्वभुजम्	= अपनी भुजा		
न्यस्य	= रखकर	**पश्यत**	= देखो—
चलन्ती	= चलती हुई	**इति**	= इस प्रकार
ननु	= अरे सखाओ !	**आह**	= बोल उठी

श्रीकृष्णके साथ एकमन हुई एक दूसरी गोपी अपनेको श्रीकृष्ण मानकर दूसरी किसी गोपीके गलेमें बाँह डालकर चलने लगी और कहने लगी—अरे सखाओ ! मैं श्रीकृष्ण हूँ, तुम मेरी यह मनोहर चाल तो देखो ॥१९॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥

मा, भैष्ट, वातवर्षाभ्याम्, तत्त्राणम्, विहितम्, मया, इति, उक्त्वा, एकेन, हस्तेन, यतन्ती, उन्निदधे, अम्बरम् ॥ २० ॥

(देखो)

वातवर्षाभ्याम्	= आँधी एवं वर्षासे
मा भैष्ट	= मत डरो
मया	= मेरेद्वारा
तत्त्राणम्	= उनसे रक्षा (की व्यवस्था)
विहितम्	= कर दी गयी है
इति	= इस प्रकार
उक्त्वा	= कहकर
यतन्ती	= (गोवर्धन-धारण-के) प्रयत्नका अनुकरण करती हुई (एक गोपी) ने
एकेन	= एक
हस्तेन	= हाथसे
	(अपने उत्तरीय)
अम्बरम्	= वस्त्रको
उन्निदधे	= ऊपर उठा लिया तथा ऊपर ही उसे धारण किये रही

एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहने लगी—तुमलोग आँधी-पानीसे मत डरो, मैंने उससे बचनेकी सारी व्यवस्था कर दी है। यों कहकर वह गोपी गोवर्द्धन-धारणका अनुकरण करती हुई एक हाथसे अपनी ओढ़नीको ऊपर उठाकर उसे तानकर खड़ी हो गयी ॥ २० ॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥

आरुह्य, एका, पदा, आक्रम्य, शिरसि, आह, अपराम्, नृप, दुष्ट, अहे, गच्छ, जातः, अहम्, खलानाम्, ननु, दण्डधृक् ॥ २१ ॥

नृप	=राजा परीक्षित् !	ननु	=अरे
एका	=एक गोपी	दुष्ट	=दुष्ट
अपराम्	=किसी दूसरीके प्रति (जो कालिय सर्प-का भाव दिखा रही थी)	अहे	=सर्प (यहाँसे)
		गच्छ	=चला जा (तू जान ले)
पदा	=पैरसे	खलानाम्	=खलोंके लिये
आक्रम्य	=आघात कर (तथा उसके)	दण्डधृक्	=दण्ड-विधान करनेवाला
शिरसि	=सिरपर	अहम्	=मैं
आरुह्य	=चढ़कर	जातः	=आविर्भूत हो चुका हूँ
आह	=बोली—		

राजा परीक्षित् ! एक गोपी कालिय नाग बनी तो दूसरी कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर पैरसे ठोकर मारकर और उसके सिरपर चढ़कर बोली—'अरे दुष्ट सर्प ! तू यहाँसे चला जा। मैं दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आविर्भूत हुआ हूँ ॥ २१ ॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ।
चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥

तत्र, एका, उवाच, हे, गोपाः, दावाग्निम्, पश्यत, उल्बणम्, चक्षूंषि, आशु, अपिदध्वम्, वः, विधास्ये, क्षेमम्, अञ्जसा ॥ २२ ॥

तत्र	=वहाँ (श्रीकृष्ण-भावनासे युक्त)	एका	=एक (गोपी) (दावानलसे भीत हुए गोपोंका

	अनुकरण करने-वाली कतिपय गोपियोंसे)		(किंतु भयभीत न होकर)
उवाच	=बोली—	आशु	=शीघ्र
हे	=हे	चक्षूंषि	=(अपने) नेत्रोंको
गोपाः	=गोपो !	अपिदध्वम्	=मूँद लो
उल्बणम्	=(नेत्रोंको चौंधिया देनेवाले इस) विचित्र	वः	=तुमलोगोंकी
		क्षेमम्	=रक्षा
		अञ्जसा	=अनायास ही (मैं)
दावाग्निम्	=दावानलको		
पश्यत	=देखो	विधास्ये	=कर दूँगा

उसी समय एक गोपी श्रीकृष्ण बनकर दावानलसे डरे हुए गोपोंका अनुकरण करनेवाली कई गोपियोंसे बोली—हे गोपो ! देखो वनमें भयंकर दावानल जल उठा है; पर तुमलोग डरो मत, तुरंत अपनी आँखें मूँद लो । मैं अनायास ही तुमलोगोंकी रक्षा कर लूँगा ॥ २२ ॥

बद्धान्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले ।
भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥

बद्धा, अन्यया, स्रजा, काचित्, तन्वी, तत्र, उलूखले, भीता, सुदृक्, पिधाय, आस्यम्, भेजे, भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

तत्र	=वहाँ (व्रजेश्वरीका अनुकरण करनेवाली)	अन्यया	=किसी दूसरी (गोपी) के द्वारा
		स्रजा	=मालाके द्वारा

उलूखले	= { ऊखल (का भाव दिखानेवाली एक गोपी) के साथ	आस्यम्	= (अपने) मुखको (हाथोंसे)
बद्ध्वा	= बाँधी (जाकर)	पिधाय	= ढककर (जैसे जननीके द्वारा बँधे हुए श्रीकृष्ण भयभीत हो गये थे, ठीक उस प्रकार रुदन आदि)
का-चित्	= कोई एक (कृष्ण-भाव-भावित)		
तन्वी	= कृशाङ्गी (व्रज-सुन्दरी)	भीति-विडम्बनम्	= { भय (की चेष्टाओं) का अनुकरण
भीता	= { डरी हुई-सी (बनकर)		
सुदृक्	= सुन्दर नेत्रोंवाले	भेजे	= करने लगी

इतनेमें एक गोपीने व्रजेश्वरी श्रीयशोदाजीका भाव ग्रहण किया, दूसरी एक गोपी श्रीकृष्णके भावसे भावित हुई। यशोदा बनी गोपीने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्ण बनी गोपीको ऊखलसे बाँधनेकी भाँति बाँध दिया। तब वह श्रीकृष्ण बनी हुई व्रजसुन्दरी डरी हुई-सी अपने सुन्दर नेत्रोंवाले मुखको हाथोंसे ढँककर, जिस प्रकार श्रीकृष्ण यशोदा मैयाके द्वारा बाँधे जानेपर भयभीत हो गये थे, ठीक उसी प्रकार रुदन आदि भयकी चेष्टाओंका अनुकरण करने लगी ॥ २३ ॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ।
व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥

एवम्, कृष्णम्, पृच्छमानाः, वृन्दावनलताः, तरून्, व्यचक्षत, वनोद्देशे, पदानि, परमात्मनः ॥ २४ ॥

एवम्	= इस प्रकार		(उस)
वृन्दावन लताः	= वृन्दावनकी लताओं	वनोद्देशे	= वनप्रदेशमें
	(एवं)		(अचानक)
तरून्	= वृक्षोंको	परमात्मनः	= परमात्मा (श्रीकृष्णचन्द्र) के
कृष्णम्	= श्रीकृष्ण (के सम्बन्धमें)	पदानि	= पद (-चिह्नोंको)
पृच्छमानाः	= पूछती हुई (व्रजसुन्दरियोंने)	व्यचक्षत	= देखा

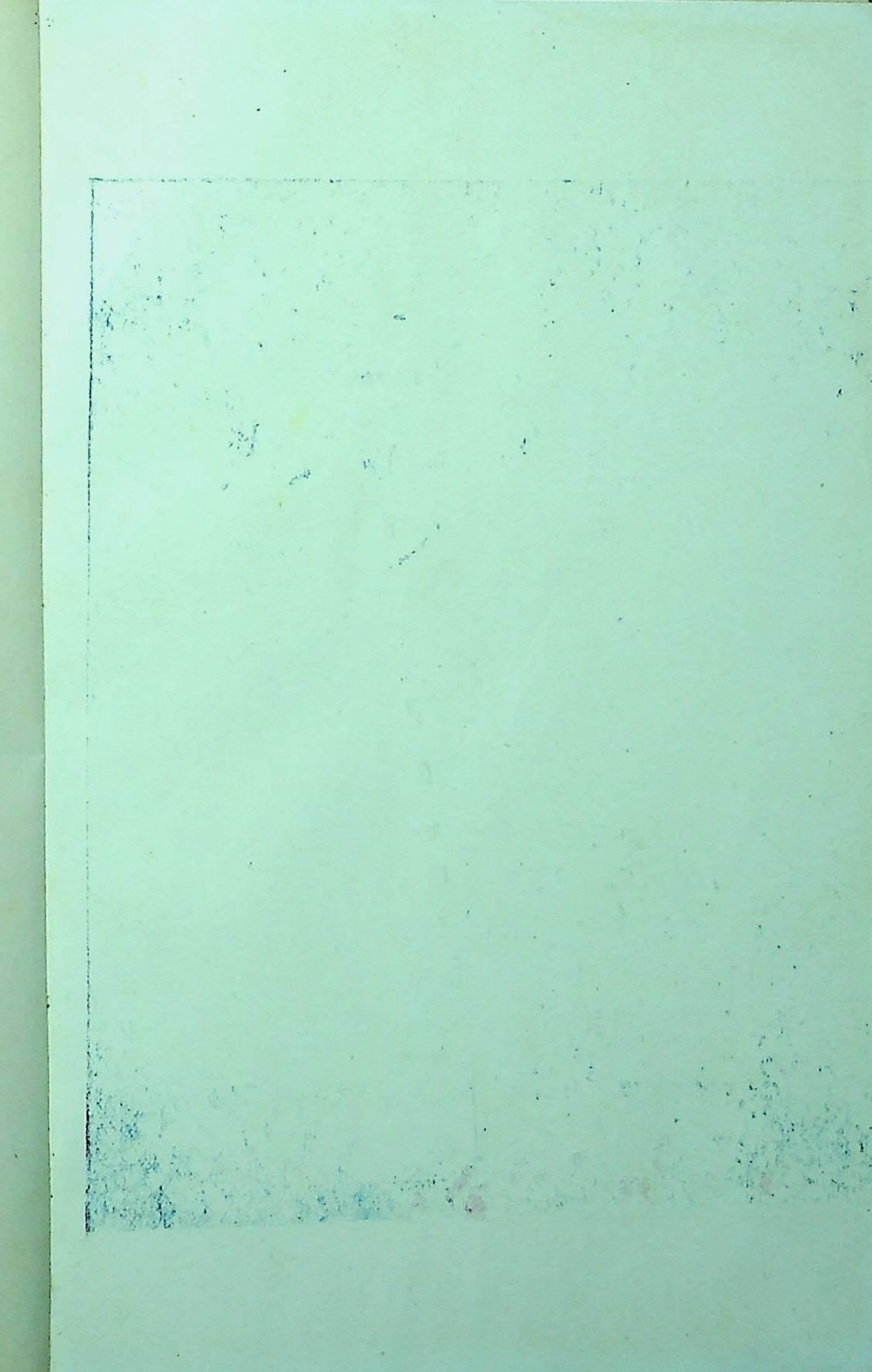
इस प्रकार वृन्दावनके वृक्ष-लताओंसे श्रीकृष्णका पता पूछती हुई वे वनमें एक ऐसे स्थानपर पहुँचीं, जहाँ उन्हें अकस्मात् परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रके चरणचिह्न दिखायी पड़े ॥ २४ ॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥

पदानि, व्यक्तम्, एतानि, नन्दसूनोः, महात्मनः, लक्ष्यन्ते, हि, ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥

पदचिह्न देखकर वे बोलीं—

एतानि	= ये	हि	= क्योंकि
पदानि	= पदचिह्न	ध्वजाम्भोज-वज्राङ्कुश-यवादिभिः-	= ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश, यव आदि (केचिह्नों)से
व्यक्तम्	= निश्चित ही		(युक्त ये)
महात्मनः	= पुरुषोत्तम		
नन्दसूनोः	= नन्दनन्दनके (हैं, दूसरेके नहीं)	लक्ष्यन्ते	= दीख पड़ रहे हैं





श्रीकृष्णविरहमें गोपियाँ

चरणचिह्नोंको देखकर वे परस्पर कहने लगीं—ये चरणचिह्न निश्चय ही महात्मा पुरुषोत्तम नन्दनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके हैं; क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश, जौ आदिके चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे हैं ॥ २५ ॥

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।
वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥

तैः, तैः, पदैः, तत्पदवीम्, अन्विच्छन्त्यः, अग्रतः, अबलाः, वध्वाः, पदैः, सुपृक्तानि, विलोक्य, आर्ताः, समब्रुवन् ॥ २६ ॥

अबलाः	= व्रजसुन्दरियाँ	**वध्वाः**	= (किसी अन्य गोप-) वधूके
तैः	= उन-	**पदैः**	= पदचिह्नोंसे (श्रीकृष्णपद-चिह्नोंको)
तैः	= उन		
पदैः	= पदचिह्नोंसे		
तत्पदवीम्	= श्रीकृष्णका अस्तित्व	**सुपृक्तानि**	= मिला हुआ (पाया । फिर तो यह)
अन्विच्छन्त्यः	= खोजती हुई— (उन्हींके पीछे-पीछे आगे बढ़ीं; पर तुरंत ही)	**विलोक्य**	= देखकर
		आर्ताः	= दुःखसे पीड़ित हुई (कुछ गोपियाँ)
अग्रतः	= सामने	**समब्रुवन्**	= कहने लगीं

उन चरण-चिह्नोंके सहारे प्रियतम श्रीकृष्णको ढूँढती हुई वे व्रज-सुन्दरियाँ आगे बढ़ीं तो उन्हें सामने श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके साथ ही किसी व्रजवधूके भी चरणचिह्न दिखायी दिये। उन्हें देखकर वे अत्यन्त पीड़ित हुईं और परस्पर कहने लगीं—॥ २६ ॥

कस्याः पदानि चैतानि यातायाः नन्दसूनुना ।
अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥२७॥

कस्याः, पदानि, च, एतानि, यातायाः, नन्दसूनुना, अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः, करेणोः, करिणा, यथा ॥ २७ ॥

(ओह !)	
यथा = जैसे (अपने स्वामी)	**अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः** = अपने कंधेपर श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाको धारण किये
करिणा = गजराजके साथ	**नन्दसूनुना** = श्रीकृष्णके साथ-साथ
करेणोः = (किसी) हथिनीका (मिलन हो, गजेन्द्र उस हथिनीके कंधेपर अपनी सूँड़ रख दे और वे दोनों सटे हुए चलें, उसी प्रकार)	**यातायाः** = चलकर गयी हुई
	कस्याः = किस (व्रजसुन्दरी) के
	एतानि = ये
	च = और (दूसरे)
	पदानि = पदचिह्न (दीख रहे हैं ?)

ओह ! जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ जाती हो और गजराज उस हथिनीके कंधेपर अपनी सूँड़ रख दे और दोनों मिलकर चलें, वैसे ही अपने कंधेपर श्रीश्यामसुन्दरकी भुजाको धारण किये हुए उनके साथ-साथ चलनेवाली किस सौभाग्यवती व्रजसुन्दरीके ये दूसरे चरण-चिह्न हैं ? ॥ २७ ॥

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥२८॥

अनया, आराधितः, नूनम्, भगवान्, हरिः, ईश्वरः,
यत्, नः, विहाय, गोविन्दः, प्रीतः, याम्, अनयत्, रहः ॥ २८ ॥

अनया	= इस (बड़भागिनी गोपी)के द्वारा
नूनम्	= निश्चय ही
हरिः	= श्रीहरि (सबका मन हरण करनेवाले)
ईश्वरः	= सर्वशक्तिमान्
भगवान्	= भगवान् श्रीकृष्णकी
आराधितः	= भली-भाँति आराधना हुई है,
यत्	= जिससे
प्रीतः	= प्रसन्न हुए
गोविन्दः	= श्रीकृष्णचन्द्र
नः	= हमलोगोंको (तो वनमें)
विहाय	= छोड़कर
याम्	= यह जो (भाग्यवती गोपी) है, इसको (अपने साथ)
रहः	= एकान्त (स्थान)में
अनयत्	= ले आये

निश्चय ही यह हमलोगोंका मन हरण करनेवाले सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेवाली—उनसे परम प्रेम करनेवाली आराधिका—(श्रीराधिका) होगी । उस परमप्रेमके फलस्वरूप ही इसपर रीझकर गोविन्द श्रीकृष्णचन्द्र इस बड़भागिनीको एकान्तमें ले गये हैं और हमलोगोंको वनमें छोड़ दिया है ॥ २८ ॥

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।
यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥

धन्याः, अहो, अमी, आल्यः, गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः,
यान्, ब्रह्मा, ईशः, रमा, देवी, दधुः, मूर्ध्नि, अघनुत्तये ॥ २९ ॥

कुछ गोपवनिताओंने कहा—

आल्यः	=सखियो !	रमा देवी	=भगवती लक्ष्मी (भी)—तीनों
अहो	=अहा !	अघनुत्तये	=(विरह आदि) दुःखोंके नाशके लिये
अमी	=ये	मूर्ध्नि	=सिरपर
गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः	=श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके रजःकण	दधुः	=धारण कर चुके हैं। (इन रजःकणोंको सिरपर चढ़ाकर क्या हम उन्हें नहीं पा सकतीं ?)
धन्याः	=अत्यन्त पवित्र (हैं, इसीलिये तो)		
यान्	=इन (रजःकणों)को		
ब्रह्मा	=ब्रह्मा		
ईशः	=शंकर		

कुछ व्रजसुन्दरियोंने कहा—प्रिय सखियो ! अहा ! ये श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके रजःकण धन्य हैं। ये अत्यन्त पवित्र हैं; क्योंकि श्रीकृष्णके पद-कमलोंसे इनका स्पर्श हो चुका है। इसीलिये तो ब्रह्मा, शंकर और लक्ष्मी आदि भी अपने-अपने अशुभों—दुःखोंका नाश करनेके लिये इन्हें मस्तकपर धारण करते हैं। आओ, हम भी इन रजःकणोंको सिरपर चढ़ायें, ये रजःकण अवश्य ही हमारे श्रीकृष्णवियोगरूप अशुभको दूर कर देंगे ॥ २९ ॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ।
यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥

तस्याः, अमूनि, नः, क्षोभम्, कुर्वन्ति, उच्चैः, पदानि, यत्, या, एका, अपहृत्य, गोपीनाम्, रहः, भुङ्क्ते, अच्युताधरम् ॥ ३० ॥

कुछ गोपियोंने कहा—

	(सखियो !)	एका	= अकेली (ही)
तस्याः	= उस (गोपी) के		(हम सभी)
अमूनि	= ये	गोपीनाम्	= गोपियोंकी
पदानि	= पदचिह्न		(सार-सर्वस्व वस्तु)
नः	= हमलोगोंके (हृदयमें)	अच्युताधरम्	= श्रीकृष्णके अधरामृतको
उच्चैः	= अत्यधिक		(हमसे)
क्षोभम्	= (ईर्ष्याजनित)जलन	अपहृत्य	= छीनकर
कुर्वन्ति	= उत्पन्न कर रहे हैं	रहः	= एकान्तमें
यत्	= कारण कि		(जाकर उसका)
या	= (वह) जो	भुङ्क्ते	= उपभोग कर रही है

कुछ गोपियाँ बोलीं—सखियो ! यह तो ठीक है; परंतु वह जो सखी श्रीकृष्णको एकान्तमें ले जाकर हम सब गोपियोंकी सार-सर्वस्व वस्तु उनके मधुर अधरामृत-रसको हमसे छीनकर अकेली ही उसका पान कर रही है, उसके ये उभरे हुए चरणचिह्न हम सबके हृदयोंमें अत्यधिक जलन उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ३० ॥

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः ।
खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥३१॥

न, लक्ष्यन्ते, पदानि, अत्र, तस्याः, नूनम्, तृणाङ्कुरैः, खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलाम्, उन्निन्ये, प्रेयसीम्, प्रियः ॥ ३१ ॥

	(सखियो ! देखो)	तस्याः	= उस गोपीके
अत्र	= यहाँ	पदानि	= चरण-चिह्न

न = नहीं
लक्ष्यन्ते = दीख पड़ रहे हैं
(अतः)
नूनम् = निश्चय ही
प्रियः = प्रिय श्रीकृष्णने
तृणाङ्कुरैः = घासकी कठोर नोकोंसे

खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलाम् = जिसके सुकुमार तलवोंको पीड़ा हो रही थी, (अपनी) उस
प्रेयसीम् = प्रियाको
(अब आगे)
उन्निन्ये = कंधेपर चढ़ाकर ले गये हैं

कुछ आगे बढ़नेपर जब गोपियोंको उस गोपीके चरणचिह्न नहीं दिखलायी दिये, तब वे बोलीं—अरी सखियो ! देखो, यहाँ तो उस गोपीके चरण-चिह्न नहीं दिखायी पड़ रहे हैं। जान पड़ता है, प्यारे श्यामसुन्दरने देखा होगा कि हमारी प्रेयसीके सुकुमार तलवोंमें घासकी कठोर नोक गड़ रही है; इसलिये वे हो-न-हो उसको अपने कंधेपर चढ़ाकर ले गये होंगे ॥ ३१ ॥

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ।
गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः॥ ३२॥

इमानि, अधिकमग्नानि, पदानि, वहतः, वधूम्, गोप्यः, पश्यत, कृष्णस्य, भाराक्रान्तस्य, कामिनः ॥ ३२ ॥

गोप्यः = गोपियो !
(यह लो, अपनी प्रेम-पात्री उस गोप-)
वधूम् = वधूको
(कंधेपर चढ़ाये)
वहतः = ले जाते हुए (तथा)
भाराक्रान्तस्य = उसके भारसे दबे हुए (परम)

कामिनः = प्रेमी
कृष्णस्य = श्रीकृष्णचन्द्रके
अधिकमग्नानि = (भूमिमें) अधिक धँसे हुए
इमानि = इन
पदानि = चरणचिह्नोंको
पश्यत = देखो

उससे कुछ आगे बढ़नेपर उनमेंसे एकने कहा—अरी गोपियो ! देखो तो यहाँ श्रीकृष्णके चरणकमल पृथ्वीमें गहरे धँसे हुए दिखायी देते हैं। निश्चय ही वे प्रेमविह्वल श्यामसुन्दर उस गोपवधूको अपने कंधेपर चढ़ाकर ले गये हैं, उसीके भारसे उनके ये चरण जमीनमें धँस गये हैं ॥३२॥

अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥ ३३ ॥

अत्र, अवरोपिता, कान्ता, पुष्पहेतोः, महात्मना,
अत्र, प्रसूनावचयः, प्रियार्थे, प्रेयसा, कृतः,
प्रपदाक्रमणे, एते, पश्यत, असकले, पदे ॥ ३३ ॥

महात्मना = परम उदार-हृदय (श्रीकृष्णचन्द्रने)
पुष्पहेतोः = पुष्पचयन करनेके लिये
अत्र = यहाँ (इस स्थानपर तो)
कान्ता = अपनी प्रियाको (कंधेसे)
अवरोपिता = नीचे उतार दिया है; (तथा यह देखो)
अत्र = यहाँपर
प्रेयसा = उन प्रेमी श्रीकृष्णचन्द्रने
प्रियार्थे = प्रिया (का शृङ्गार करने) के लिये
प्रसूनावचयः = फूलोंका चयन
कृतः = किया है; (पुष्पचयनके समय)
प्रपदाक्रमणे = चरणोंके अग्रभाग-(पर वे जब खड़े हुए हैं, उस समय चरणाग्र) से भूमिपर अङ्कित हुए
एते = इन
असकले पदे = असम्पूर्ण चरण-चिह्नोंको (दोनों पैरोंके आधे-आधे भागके चिह्नोंको)
पश्यत = देखो

सखियो ! महात्मा (नित्य कामविजयी) श्यामसुन्दरने प्रेमवश यहाँ पुष्पचयन करनेके लिये अपनी प्रेयसीको कंधेसे नीचे उतार दिया है और उन परमप्रेमी व्रजराजकुमारने अपनी प्रियाका शृङ्गार करनेके लिये उचक-उचककर पुष्पोंका चयन किया है, इससे उनके चरणोंके पंजोंके ही चिह्न पृथ्वीपर उभर पाये हैं। देखो तो यहाँ वे अधूरे चरणचिह्न दिखायी दे रहे हैं ॥ ३३॥

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम्।
तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३४॥

केशप्रसाधनम्, तु, अत्र, कामिन्याः, कामिना, कृतम्, तानि, चूडयता, कान्ताम्, उपविष्टम्, इह, ध्रुवम् ॥ ३४॥

अत्र	= यहाँपर	**तानि**	= उन (पुष्पों) को (लेकर उनसे)
तु	= तो	**कान्ताम्**	= प्रियाका
कामिना	= प्रेमी श्रीकृष्णचन्द्रने	**चूडयता**	= शिरोभूषण निर्मित करते हुए (वे)
कामिन्याः	= उस प्रेमिकाके	**इह**	= यहाँपर
केशप्रसाधनम्	= केशोंकी रचना	**ध्रुवम्**	= निश्चय ही
कृतम्	= की है (तथा चयन किये हुए)	**उपविष्टम्**	= बैठे हैं

देखो ! यहाँ उन प्रेमी श्रीश्यामसुन्दरने उस प्रेमिकाके केश सँवारे हैं और निश्चय ही यहाँ बैठकर उन्होंने अपने कर-कमलोंद्वारा चुने हुए पुष्पोंद्वारा अपनी कान्ताको चूडामणिसे सजाया है ॥ ३४ ॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः।
कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३५॥

रेमे, तया, च, आत्मरतः, आत्मारामः, अपि, अखण्डितः,
कामिनाम्, दर्शयन्, दैन्यम्, स्त्रीणाम्, च, एव, दुरात्मताम्॥३५॥

आत्मरतः	= { आत्मामें ही संतुष्ट रहनेवाले	स्त्रीणाम्	= स्त्रियोंकी
च	= और	दुरात्मताम्	= कुटिलता (की लीला)
आत्मारामः	= { आत्मामें ही रमण करनेवाले (श्रीकृष्णचन्द्र)	दर्शयन्	= दिखलाते हुए (जगत्‌के जीवोंको शिक्षा देते हुए) (जिसे वे अपने साथ ले आये थे)
अखण्डितः	= { स्त्रीविलाससे सर्वथा अनाकृष्ट रहनेपर		
अपि	= भी		
कामिनाम्	= स्त्रीकामुकोंकी	तया	= { उस (व्रजसुन्दरी) के साथ
दैन्यम्	= दीनता	एव	= ही
च	= एवं	रेमे	= विहार कर रहे थे

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! श्रीकृष्ण नित्य अपने स्वरूपमें ही संतुष्ट और पूर्ण हैं, वे नित्य-निरन्तर आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे अखण्ड हैं—उनके सिवा और कोई है ही नहीं; अतः कामिनियोंका कोई भी विलास उनको कभी अपनी ओर नहीं खींच सकता। इतनेपर भी वे कामियोंकी दीनता—स्त्रीपरवशता और स्त्रियोंकी कुटिलता दिखलाते हुए उस व्रजसुन्दरीके साथ एकान्तमें (अपने आत्माराम स्वरूपसे सर्वथा अच्युत तथा उसमें नित्यप्रतिष्ठित रहते हुए ही) विहार कर रहे थे ॥ ३५ ॥

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।
यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३६ ॥

सा च मेने तदाऽऽत्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ।
हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३७॥

इति, एवम्, दर्शयन्त्यः, ताः, चेरुः, गोप्यः, विचेतसः, याम्, गोपीम्, अनयत्, कृष्णः, विहाय, अन्याः, स्त्रियः, वने ॥३६॥
सा, च, मेने, तदा, आत्मानम्, वरिष्ठम्, सर्वयोषिताम्, हित्वा, गोपीः, कामयानाः, माम्, असौ, भजते, प्रियः ॥३७॥

किंतु उन व्रजसुन्दरियोंको कुछ पता नहीं था कि नन्दनन्दन कहाँ, किस स्थानपर हैं।

ताः	=वे	**अन्याः**	=अन्य
गोप्यः	=गोपियाँ (तो)	**स्त्रियः**	=(व्रज-)वनिताओंको
इति एवम्	=उपर्युक्त प्रकारसे (उनके पदचिह्न एवं अपनी प्रियाके केशप्रसाधन आदिके चिह्नोंको परस्पर)	**वने**	=वनमें
		विहाय	=छोड़कर
		याम्	=जिस
		गोपीम्	=गोपिकाको (अपने साथ)
दर्शयन्त्यः	=दिखलाती हुई	**अनयत्**	=ले गये थे
विचेतसः	=व्याकुल-चित्त हुई (इस वनसे उस वनमें)	**सा**	=वह
चेरुः	=घूम रही थीं (पर इसी बीचमें इधर एक और लीला हो गयी।)	**च**	=भी— (जब श्रीकृष्णसे उसे अत्यधिक प्रेम मिला)
		तदा	=तब— (मानिनी होकर)
कृष्णः	=श्रीकृष्णचन्द्र		

आत्मानम्	=अपनेको	प्रियः	=प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र (उन्हें)
सर्व-योषिताम्	=समस्त स्त्रियोंकी (अपेक्षा अधिक)	कामयानाः	=चाहनेवाली (और सभी)
वरिष्ठम्	=श्रेष्ठ	गोपीः	=गोपियोंको
मेने	=मानने लगी (क्योंकि उसने सोचा)	हित्वा	=छोड़कर (केवल)
		माम्	=मुझे (ही)
असौ	=ये	भजते	=भज रहे हैं

वे गोपसुन्दरियाँ श्रीश्यामसुन्दरमें तन्मय होकर एक-दूसरीको श्रीश्यामसुन्दरके तथा उनकी प्रियाके चरणचिह्नोंको दिखलाती हुई उन्हें ढूँढ़नेके लिये व्याकुलहृदय होकर वन-वन भटक रही थीं। इस बीचमें उधर यह लीला हुई कि श्रीकृष्णचन्द्र दूसरी व्रजवनिताओंको वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपीको एकान्तमें ले गये थे, उसके मनमें यह अभिमानका भाव आ गया कि 'मैं ही समस्त गोपियोंसे श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये प्यारे श्यामसुन्दर सब गोपियोंको छोड़कर एकमात्र मुझको ही चाहते हैं और मुझको ही भज रहे हैं—मुझसे ही सुख प्राप्त कर रहे हैं' ॥ ३६-३७ ॥

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्।
न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥ ३८ ॥

ततः, गत्वा, वनोद्देशम्, दृप्ता, केशवम्, अब्रवीत्,
न, पारये, अहम्, चलितुम्, नय, माम्, यत्र, ते, मनः ॥३८॥

ततः	=ऐसा मान उदय होनेके पश्चात्	गत्वा	=जाकर
		दृप्ता	=गर्वित हुई (वह गोपी)
वनोद्देशम्	=वनके एक स्थानपर	केशवम्	=श्रीकृष्णचन्द्रके प्रति

अब्रवीत्	= बोली	**यत्र**	= जहाँ
अहम्	= मैं (अब)	**ते**	= तुम्हारी
चलितुम्	= चल	**मनः**	= इच्छा हो (वहीं)
न	= नहीं	**माम्**	= मुझे (उठाकर)
पारये	= पा रही हूँ;	**नय**	= ले चलो

इस प्रकार अभिमानका आविर्भाव होनेपर वह गोपी वनमें एक स्थानपर जाकर सौभाग्यमदसे मतवाली हो गयी और श्रीकृष्णसे—जो ब्रह्मा और शंकरके भी शासक हैं—कहने लगी—'अब तो मुझसे चला नहीं जाता। मेरे कोमल चरण थक गये हैं, अतः तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर वहाँ ले चलो ॥ ३८ ॥

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति ।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३९॥

एवम्, उक्तः, प्रियाम्, आह, स्कन्धे, आरुह्यताम्, इति, ततः, च, अन्तर्दधे, कृष्णः, सा, वधूः, अन्वतप्यत ॥ ३९ ॥

एवम्	= इस प्रकार	**आह**	= कहा
उक्तः	= कहे जानेपर	**च** / **ततः**	= और इसके पश्चात्
कृष्णः	= श्रीकृष्णचन्द्रने (अपनी)		(वे)
प्रियाम्	= प्रियाको— (अच्छा प्यारी ! तुम अब मेरे)	**अन्तर्दधे**	= अन्तर्धान हो गये (फिर तो)
स्कन्धे	= कंधेपर	**सा**	= वह
आरुह्यताम्	= चढ़ लो—	**वधूः**	= (गोप-) वधू
इति	= यह	**अन्वतप्यत**	= अविराम विलाप करने लगी

अपनी प्रियतमाकी गर्वभरी वाणी सुनकर श्रीश्यामसुन्दरने उससे कहा—'अच्छा प्रिये ! अब तुम मेरे कंधेपर चढ़ जाओ।' यह सुनकर

ज्यों ही वह गोपी कंधेपर चढ़ने लगी, त्यों ही भगवान् अन्तर्धान हो गये; तब तो उन्हें न देखकर वह गोप-वधू अविरत रोने-कलपने लगी ॥ ३९ ॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥४०॥

हा, नाथ, रमण, प्रेष्ठ, क्व, असि, क्व, असि, महाभुज,
दास्याः, ते, कृपणायाः, मे, सखे, दर्शय, संनिधिम् ॥ ४० ॥

हा	=हा
नाथ	=प्राणेश्वर !
रमण	=(हा) रमण !
प्रेष्ठ	=(हा) प्रियतम !
महाभुज	=(हा) महाबाहो ! (तुम)
क्व	=कहाँ
असि	=हो,
क्व	=कहाँ
असि	=हो ?
सखे	=हे (मेरे प्राण-) सखा !
ते	=तुम्हारी (इस)
कृपणायाः	=दीन
दास्याः	=दासी
मे	=मुझको (अपना)
संनिधिम्	=सांनिध्य
दर्शय	=दिखा दो

वह कातर कण्ठसे बोली—'हा प्राणनाथ ! हा रमण ! हा प्रियतम ! हा महाबाहो ! तुम कहाँ हो, कहाँ हो ? हे मेरे प्राणसखा ! मैं तुम्हारी अत्यन्त दीन दासी हूँ । शीघ्र ही मुझे अपने सांनिध्यका दर्शन कराओ, मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दो ॥ ४० ॥

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः ।
ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥ ४१ ॥

अन्विच्छन्त्यः, भगवतः, मार्गम्, गोप्यः, अविदूरतः,
ददृशुः, प्रियविश्लेषमोहिताम्, दुःखिताम्, सखीम् ॥ ४१ ॥

राजा परीक्षित् ! इतनेमें ही–

भगवतः	= भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके		(उन्होंने)
मार्गम्	= (गमन-) पथको	प्रियविश्लेष मोहिताम्	= प्रिय-वियोगसे मूर्छित हुई
अन्विच्छन्त्यः	= ढूँढ़ती हुई (अन्य)	दुःखिताम्	= (अत्यन्त) दुःखिनी
गोप्यः	= गोपियाँ (इस ओर आ पहुँचीं तथा)		(अपनी इस)
		सखीम्	= सखीको
अविदूरतः	= अत्यन्त निकटसे	ददृशुः	= देख लिया

परीक्षित् ! इसी बीच भगवान् श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंके सहारे उनके जानेके मार्गको ढूँढ़ती हुई गोपियाँ वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने बहुत ही समीप आकर देखा कि उनकी भाग्यवती सखी अपने प्रियतमके वियोगसे अत्यन्त दुखी होकर मूर्छित पड़ी है ॥ ४१ ॥

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ।
अवमानं च दौरात्म्याद् विस्मयं परमं ययुः ॥ ४२ ॥

तया, कथितम्, आकर्ण्य, मानप्राप्तिम्, च, माधवात्, अवमानम्, च, दौरात्म्यात्, विस्मयम्, परमम्, ययुः ॥ ४२ ॥

	(श्रीकृष्णविरहिणी)	च	= एवं
तया	= उस (गोपसुन्दरी-के मुख) से		(अपनी ही)
		दौरात्म्यात्	= कुटिलताके कारण
कथितम्	= वर्णित–		
माधवात्	= माधवके द्वारा	अवमानम्	= (परित्यागरूप) अपमान पानेकी
मानप्राप्तिम्	= आदर पानेकी		

च	=दोनों ही (घटनाओंको)	परमम्	=परम
आकर्ण्य	=सुनकर (वे)	विस्मयम्	=विस्मयको
		ययुः	=प्राप्त हुईं

तब उन्होंने और भी समीप आकर प्रयत्न करके उसको मूर्छासे जगाया। जागनेपर प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके विरहमें कातर हुई उस गोपसुन्दरीने भगवान् माधवके द्वारा उसे जो प्रेम तथा सम्मान प्राप्त हुआ था, वह सुनाया तथा यह भी बतलाया कि फिर 'मैंने ही गर्वमें भरकर कुटिलतावश उनका अपमान किया, तब वे मुझे छोड़कर अन्तर्धान हो गये।' इन दोनों विचित्र घटनाओंको सुनकर गोपियोंको परम आश्चर्य हुआ ॥ ४२॥

ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद् विभाव्यते।
तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४३॥

ततः, अविशन्, वनम्, चन्द्रज्योत्स्ना, यावत्, विभाव्यते, तमः, प्रविष्टम्, आलक्ष्य, ततः, निववृतुः, स्त्रियः ॥ ४३॥

ततः	=तदनन्तर	ततः	=इससे आगे
स्त्रियः	=समस्त (व्रजगोपिकाएँ)	तमः-प्रविष्टम्	=अत्यन्त अन्धकारमय (गहन वन)
यावत्	= जहाँतक	आलक्ष्य	=देखकर (और यह सोचकर कि हमें देखकर श्रीकृष्णचन्द्र और भी छिप जायँगे और हमें नहीं मिलेंगे, वे उधरसे)
चन्द्र-ज्योत्स्ना	=चन्द्रमाकी किरणें	निववृतुः	=लौट पड़ीं
विभाव्यते	=परिलक्षित हो रही थीं, (वहाँतक श्रीकृष्ण-चन्द्रको ढूँढ़ती हुई)		
वनम्	= वनमें		
अविशन्	=चली गयीं; (किंतु)		

तदनन्तर वनमें जहाँतक चन्द्रमाकी किरणें छिटक रही थीं, वहाँतक तो वे समस्त व्रजगोपियाँ श्यामसुन्दरको ढूँढ़ती हुई चली गयीं; परंतु आगे जब उन्होंने अत्यन्त अन्धकारमय गहन वन देखा, तब यह सोचा कि यदि हम इस अन्धकारमें उन्हें ढूँढ़ती हुई चली जायँगी तो वे और भी घने अन्धकारमय वनमें जा छिपेंगे और हमें नहीं मिलेंगे, इसलिये वे उधरसे वापस चली आयीं ॥ ४३ ॥

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥ ४४ ॥

तन्मनस्काः, तदालापाः, तद्विचेष्टाः, तदात्मिकाः, तद्गुणान्, एव, गायन्त्यः, न, आत्मागाराणि, सस्मरुः ॥ ४४ ॥

तन्मनस्काः = उन (श्रीकृष्णचन्द्र) में ही मनवाली	**गायन्त्यः** = गान करती हुई (ऐसी तन्मय हो रही थीं कि वे अपने)
तदालापाः = उनकी ही चर्चामें रत हुई	**आत्मागाराणि** = देह-गेहकी (भी)
तद्विचेष्टाः = उनके निमित्त ही समस्त चेष्टाएँ करनेवाली	**न सस्मरुः** = स्मृति न कर सकीं (अपने आपके सहित घर-बार, सब कुछ वे भूल गयी थीं।)
तदात्मिकाः = उन्हींमें घुली-मिली (गोपियाँ)	
तद्गुणान् = उनके गुणोंका	
एव = ही	

उन सब गोपियोंका मन श्रीकृष्णचन्द्रके मनवाला हो रहा था, उनकी वाणी केवल श्रीकृष्णकी ही चर्चामें लगी हुई थी, उनके शरीर-

से होनेवाली प्रत्येक चेष्टा केवल श्रीकृष्णके लिये और श्रीकृष्णकी ही थी। वे श्रीकृष्णमें ही सर्वथा घुल-मिल गयी थीं, श्रीकृष्णके गुणोंका ही गान कर रही थीं। वे इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने देह-गेहकी भी सुध नहीं थी, फिर घर-द्वारकी स्मृति तो होती ही कैसे ? ॥ ४४ ॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ।
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥४५॥

पुनः, पुलिनम्, आगत्य, कालिन्द्याः, कृष्णभावनाः, समवेताः, जगुः, कृष्णम्, तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४५ ॥

कृष्णभावनाः	= श्रीकृष्णकी भावनासे युक्त	**पुलिनम्**	= पुलिनपर (चली आयीं तथा वहाँ)
तदागमन-काङ्क्षिताः	= उनके आगमन-की आकाङ्क्षा लिये	**आगत्य**	= आकर
समवेताः	= एकत्र हुई (वे गोपियाँ)	**कृष्णम्**	= श्रीकृष्णचन्द्रका (ही)
पुनः	= पुनः	**जगुः**	= (गुण-) गान करने लगीं
कालिन्द्याः	= कालिन्दीके		

श्रीकृष्णके शीघ्र ही आगमनकी आकाङ्क्षासे एकत्र होकर श्रीकृष्णकी भावनासे ही तन्मय हुई वे सब भाग्यवती व्रजसुन्दरियाँ फिर श्रीयमुनाजी-के पावन पुलिनपर लौट आयीं और वहाँ सब मिलकर प्रियतम श्रीकृष्णकी लीलाओंका मधुर गान करने लगीं ॥ ४५ ॥

॥ दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥



तीसरा अध्याय

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

गोप्यः ऊचुः

जयति, ते, अधिकम्, जन्मना, व्रजः, श्रयते, इन्दिरा, शश्वत्, अत्र, हि, दयित, दृश्यताम्, दिक्षु, तावकाः, त्वयि, धृतासवः, त्वाम्, विचिन्वते ॥ १ ॥

गोपियाँ बोलीं—

दयित =हे प्रिय !
ते =तुम्हारे
जन्मना =जन्मसे (यह)
व्रजः =व्रज (समस्त लोकोंकी अपेक्षा—और तो क्या, वैकुण्ठसे भी)
अधिकम् =अधिक
जयति =श्रेष्ठ बन गया है
हि =क्योंकि
इन्दिरा =लक्ष्मी
शश्वत् =सदा
अत्र =यहीं
श्रयते =(व्रजको अलंकृत करती हुई) निवास कर रही हैं

	(किंतु ऐसे महासुखपूर्ण व्रजमें हम सब गोपियाँ तुम्हारे विरहकी ज्वालामें जल रही हैं)	त्वाम्	= तुम्हें
त्वयि	= तुममें	दिक्षु	= सब ओर
धृतासवः	= अपने प्राण समर्पित किये हुई (हम सब)	विचिन्वते	= ढूँढ़ रही हैं (इसीलिये जीवित बची हुई हैं, अन्यथा विरहकी आगमें कभी की भस्म हो जातीं, पर अब तो)
तावकाः	= तुम्हारी (प्रिय गोपियाँ)	दृश्यताम्	= दीख जाओ

श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल वे प्रेममयी गोपियाँ गाने लगीं—'हे प्रियतम! तुम्हारे प्रकट होनेके कारण इस व्रजका गौरव वैकुण्ठ आदि दिव्य-लोकोंसे भी अधिक हो गया है; तभी तो अखिल सौन्दर्य-माधुर्यकी दिव्य मूर्ति श्रीलक्ष्मीजी अपने नित्य निवास वैकुण्ठको छोड़कर इस व्रजको सुशोभित करती हुई यहाँ निरन्तर निवास कर रही हैं। इस महान् सुखसे पूर्ण सौभाग्यमय व्रजमें हम गोपियाँ ही ऐसी हैं, जो तुम्हारी होकर भी, तुममें अपने प्राणोंको पूर्णरूपसे समर्पण करके भी वन-वन भटककर सब ओर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं, पर तुम मिल नहीं रहे हो। विरहज्वालासे जलती हुई भी इसी आशासे हम सर्वथा भस्म नहीं हो रही हैं कि तुम शीघ्र मिलोगे! अतएव अब तुम तुरंत दीख जाओ ॥ १ ॥

शरदुदाशये साधुजातसत्-
सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका
वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥

शरदुदाशये, साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा, दृशा, सुरतनाथ, ते, अशुल्कदासिकाः, वरद, निघ्नतः, न, इह, किम्, वधः ॥ २ ॥

सुरतनाथ	= हे रसेश्वर !	अशुल्कदासिकाः	= बिना मोलकी दासियाँ (हम सब) को
वरद	= हे वरद !	निघ्नतः	= मार डालनेवाले
शरदुदाशये	= शरत्कालीन सरोवरमें	ते	= (निर्दयी) तुम्हारी (यह चेष्टा)
साधुजात-सत्सर-सिजोदर-श्रीमुषा	= सुन्दर प्रकारसे उत्पन्न उत्कृष्ट जातिके विकसित कमलकोशोंकी शोभा अपहरण करनेवाले	किम्	= क्या
		इह	= इस जगत्में
		वधः	= वध
दृशा	= (अपने) नेत्रसे	न	= नहीं (कहा जायगा) ?

हे हमारे रसेश्वर ! हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासियाँ हैं । तुम शरद्ऋतुके सरोवरमें खिले हुए उत्कृष्ट जातिके परमसुन्दर कमलकोशोंकी कर्णिकाकी सौन्दर्य-सुषमाको चुरानेवाले अपने नेत्रोंकी मारसे हमें मार चुके हो । इस जगत्में इस प्रकार नेत्रोंसे किसीको मार डालना क्या वध नहीं है ? ॥ २ ॥

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभया-
दृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥

विषजलाप्ययात्, व्यालराक्षसात्, वर्षमारुतात्, वैद्युतानलात्, वृषमयात्मजात्, विश्वतः, भयात्, ऋषभ, ते, वयम्, रक्षिताः मुहुः ॥ ३ ॥

ऋषभ	= हे पुरुषश्रेष्ठ	वृषमयात्मजात्	= अरिष्टासुर एवं मयके पुत्र व्योमासुरसे (तथा ऐसे-ऐसे)
विषजलाप्ययात्	= (कालियहृदके) विषमय जलपानके कारण होनेवाली मृत्युसे	विश्वतः	= सब प्रकारके अनेक
व्यालराक्षसात्	= अघासुरसे	भयात्	= भयोंसे
वर्षमारुतात्	= इन्द्रकृत वर्षा, घोर आँधी अथवा बवंडरका रूप धारण किये हुए तृणावर्त दैत्यसे	ते	= तुम्हारे द्वारा
वैद्युतानलात्	= इन्द्रके वज्रपातसे, दावानलसे,	वयम्	= हम सब (की)
		मुहुः	= बारबार
		रक्षिताः	= रक्षा हुई है (किंतु आज जब हम सब तुम्हारे विरहमें भस्म होने जा रही हैं, तब तुम उपेक्षा क्यों कर रहे हो ?)

हे पुरुषश्रेष्ठ ! कालियहृदके विषमय जलपानके कारण होनेवाली मृत्युसे, अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षा, आँधी अथवा तृणावर्त दैत्यसे, तथा वज्रपातसे, भीषण दावानलसे, अरिष्टासुर और मयके पुत्र व्योमासुर आदिसे और इसी प्रकारके अनेक भयोंसे तुमने ही तो बार-बार हमारी रक्षा की थी। फिर आज तुम्हीं अपनी विरहज्वालासे हमें क्यों भस्म कर रहे हो ? ॥३॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-

नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।

विखनसार्थितो विश्वगुप्तये

सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

न, खलु, गोपिकानन्दनः, भवान्, अखिलदेहिनाम्, अन्तरात्मदृक्, विखनसा, अर्थितः, विश्वगुप्तये, सखे, उदेयिवान्, सात्वताम्, कुले ॥ ४ ॥

सखे	= हे सखे !
भवान्	= आप
खलु	= निश्चय ही
गोपिका-नन्दनः	= यशोदाके पुत्र (मात्र)
न	= नहीं हैं (अपितु)
अखिल-देहिनाम्	= समस्त प्राणियोंके
अन्तरात्म-दृक्	= अन्तरात्मा—(अन्तःकरण) के साक्षी हैं (आप तो)
विखनसा	= ब्रह्माके द्वारा
विश्वगुप्तये	= विश्वकी रक्षाके लिये
अर्थितः	= प्रार्थना किये जानेपर
सात्वताम्	= यादवोंके
कुले	= कुलमें
उदेयिवान्	= आविर्भूत हुए हैं (अतः सबकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुए आपकी हमारे प्रति ऐसी निर्दय चेष्टा तो सर्वथा अनुचित है)

हम जानती हैं कि आप निश्चय ही केवल यशोदा मैयाके लाला ही नहीं हैं, अपितु समस्त प्राणियोंके अन्तरात्माके साक्षी हैं। ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुनकर विश्वकी रक्षाके लिये ही आप यदुकुलमें आविर्भूत हुए हैं। इस प्रकार विश्वभरकी रक्षाके लिये अवतीर्ण होकर भी आप हमारे प्रति इतने निर्दय होकर हमें क्यों मार रहे हैं ? ॥ ४ ॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते

चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।

करसरोरुहं कान्त कामदं
शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

विरचिताभयम्, वृष्णिधुर्य, ते, चरणम्, ईयुषाम्, संसृतेः, भयात्, करसरोरुहम्, कान्त, कामदम्, शिरसि, धेहि, नः, श्रीकरग्रहम् ५

वृष्णिधुर्य-	= हे यादवश्रेष्ठ !
कान्त	= हे प्रिय !
संसृतेः	= संसारके
भयात्	= भयसे
ते	= तुम्हारे
चरणम् ईयुषाम्	= चरणकी शरणमें आये (प्राणियोंको)
विरचिताभयम्	= अभय देनेवाले
श्रीकरग्रहम्	= लक्ष्मीके कर-पल्लवको धारण करनेवाले
कामदम्	= सबकी अभीष्ट-पूर्ति करनेवाले (अपने)
करसरोरुहम्	= कर-कमल
नः	= हमलोगोंके
शिरसि	= सिरपर (भी)
धेहि	= रख दो !

हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! संसारसे—जन्म-मरणके चक्रसे भयभीत होकर जो प्राणी तुम्हारे चरणोंकी शरणमें आ जाते हैं, तुम्हारे कर-कमल उनको अभय कर देते हैं। श्रीलक्ष्मीजीके कर-कमलको धारण करनेवाला तथा सबकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह अपना कर-कमल हमारे सिरपर रख दो—शीघ्र दर्शन देकर हमें भी अभय कर दो ॥ ५ ॥

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां
निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।

भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो

जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

व्रजजनार्तिहन्, वीर, योषिताम्, निजजनस्मयध्वंसनस्मित, भज, सखे, भवत्किंकरीः, स्म, नः, जलरुहाननम्, चारु, दर्शय ॥६॥

व्रजजनार्तिहन्	= व्रजवासियोंके दुःख मिटानेवाले	भवत्-किंकरीः	= आपकी अपनी ही दासी
वीर	= हे वीर !	नः	= हम सबका (अब)
निजजनस्मय-ध्वंसनस्मित	= अपने जनोंके गर्वको ध्वंस कर देनेवाली मन्द मुसकान (अधरों पर) धारण करनेवाले !	भज स्म	= निश्चय ही स्मरण सुधि लो; (तथा अपना)
		चारु	= सुन्दर
		जलरुहाननम्	= मुख-कमल (हम)
		योषिताम्	= अबलाओंके (समक्ष)
सखे	= हे जीवनसखा !	दर्शय	= प्रकट कर दो

हे व्रजवासियोंके दुःखोंका नाश करनेवाले वीरशिरोमणि ! तुम्हारी मधुर मन्द मुसकान तुम्हारे प्रेमीजनोंके गर्वका ध्वंस करनेवाली है । हे हमारे प्राणसखा ! हम सब तुम्हारी दासियाँ हैं, हमें अवश्य प्रेमदान दो और हम अबलाओंको अपना मनोहर मुखकमल दिखलाकर सुखी करो ॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं

तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।

फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं

कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

प्रणतदेहिनाम्, पापकर्शनम्, तृणचरानुगम्, श्रीनिकेतनम्, फणिफणार्पितम्, ते, पदाम्बुजम्, कृणु, कुचेषु, नः, कृन्धि, हृच्छयम् ॥ ७ ॥

(मेरे प्रियतम !)	श्रीनिकेतनम् = लक्ष्मीके आश्रयभूत
प्रणत-देहिनाम् = शरणागत मनुष्योंके	ते = अपने
पापकर्शनम् = पापोंको नष्ट कर देनेवाले	पदाम्बुजम् = चरणारविन्दको
तृणचरा-नुगम् = तृणचर पशुओंके पीछे-पीछे चलनेवाले	नः = हम सबोंके
फणिफणा-र्पितम् = कालियके फणपर स्थापित हुए (तथा)	कुचेषु = वक्षःस्थलपर
	कृणु = रख दो (तथा इस प्रकार हमारे)
	हृच्छयम् = हृदयकी जलन
	कृन्धि = मिटा दो

तुम्हारे जो चरण-कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके समस्त पापोंको नष्ट कर डालते हैं, जो समस्त सौन्दर्यश्रीके धाम हैं—श्रीलक्ष्मीजीके परम आश्रयभूत हैं, जो घास चरनेवाले गौ-वत्सोंके पीछे-पीछे चलते हैं तथा जिन्होंने कालियनागके फणोंपर चढ़कर नृत्य किया था, उन अपने चरण-सरोजोंको हमारे वक्षःस्थलपर रख दो। हमारे हृदय तुम्हारे विरहकी ज्वालासे जल रहे हैं, इस प्रकार चरण-सरोजोंको रखकर उस जलनको मिटा दो ॥ ७ ॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया
बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यती-
रधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥ ८ ॥

मधुरया, गिरा, वल्गुवाक्यया, बुधमनोज्ञया, पुष्करेक्षण, विधिकरीः, इमाः, वीर, मुह्यतीः, अधरसीधुना, आप्याययस्व, नः ॥ ८ ॥

पुष्करेक्षण	= हे कमलनयन !	गिरा	= वाणी
वीर	= हे दानवीर ! (तुम्हारी)	मुह्यतीः	= मोहित हुई
		इमाः	= इन
मधुरया	= मधुर	नः	= हम सब
वल्गुवाक्यया	= मनोहर पदोंसे युक्त	विधिकरीः	= किंकरियोंको
	(एवं)	अधरसीधुना	= अधरोंके मादक मधुसे
बुधमनोज्ञया	= गाम्भीर्यके कारण पण्डितोंको भी आनन्द देनेवाली	आप्याययस्व	= आप्यायित कर जीवनदान दो

हे कमलनयन ! तुम्हारे वचन बड़े ही मधुर हैं, उनका एक-एक पद परम मनोहर है । बड़े-बड़े पण्डित भी उनके गाम्भीर्यपर मुग्ध हो जाते हैं । उन वचनोंसे हम सब गोपियाँ मोहित हो रही हैं । हम सभी तुम्हारे चरणोंकी किंकरियाँ हैं । हमारे प्राण निकले जा रहे हैं । हे दानवीर ! तुम अपनी दिव्य मधुर अधर-सुधा पिलाकर हम सबको आप्यायित करो और जीवनदान दो ॥ ८ ॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

तव, कथामृतम्, तप्तजीवनम्, कविभिः, ईडितम्, कल्मषापहम्, श्रवणमङ्गलम्, श्रीमत्, आततम्, भुवि, गृणन्ति, ते, भूरिदाः, जनाः ॥ ९ ॥

(हे प्राणेश्वर ! जो मनुष्य)

तव = तुम्हारे
कथामृतम् = लीला-कथारूप अमृतका
तप्तजीवनम् = जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान करनेवाले
कविभिः = ब्रह्मज्ञ पुरुषोंके द्वारा (भी)
ईडितम् = स्तुत
कल्मषापहम् = (समस्त) पापोंके नाशक
श्रवणमङ्गलम् = सुननेमात्रसे परम मङ्गलदायक
श्रीमत् = प्रेमरूपी परम सम्पत्तिदायक (एवं)
आततम् = (अत्यन्त) विस्तृत
भुवि = पृथ्वीपर
गृणन्ति = कीर्तन करते हैं
ते = वे (जगत्में)
भूरिदाः = बहुत बड़े दानी
जनाः = लोग हैं (यह तो तुम्हारी लीला-कथाका माहात्म्य है, तुम्हारे दर्शनकी महिमा कौन बताये। इसीलिये हमारी प्रार्थना है कि परमदुर्लभ दर्शन देकर हमें कृतार्थ करो।)

हे प्राणेश्वर ! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है । वह जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान करती है, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान तथा स्तवन किया है, उसके श्रवण-कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है । जो श्रवणमात्रसे ही प्रेमरूपी परम सम्पत्तिका दान करती है, ऐसी अत्यन्त विस्तृत कथाका पृथ्वीपर जो कीर्तन—गान करते हैं, वे जगत्में सबसे बड़े

दानी लोग हैं । यह तुम्हारी लीला-कथाकी महिमा है । तुम्हारे दर्शनकी महिमा तो अवर्णनीय है ॥ ९ ॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं
विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः
कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥

प्रहसितम्, प्रिय, प्रेमवीक्षणम्, विहरणम्, च, ते, ध्यानमङ्गलम्, रहसि, संविदः, याः, हृदिस्पृशः, कुहक, नः, मनः, क्षोभयन्ति, हि ॥ १० ॥

कुहक	= अरे छलिया !	**रहसि**	= एकान्तकी
प्रिय	= ओ प्यारे !	**हृदिस्पृशः**	= हृदयस्पर्शी (विनोद तथा प्रेमभरी)
ध्यान-मङ्गलम्	= ध्यानमात्रसे परम आनन्द देनेवाले	**संविदः**	= संकेत-चेष्टाएँ हैं, (वे सभी बातें इस समय)
ते	= तुम्हारे	**नः**	= हमारे
प्रहसितम्	= हास्य	**मनः**	= मनको
प्रेमवीक्षणम्	= प्रीतिभरी दृष्टि	**हि**	= निश्चय ही
विहरणम्	= (हमारे साथ) विहार	**क्षोभ-यन्ति**	= क्षुब्ध कर रही हैं
च	= तथा		
याः	= जो		

हमारे प्यारे श्यामसुन्दर ! तुम्हारे ध्यानमात्रसे ही परम आनन्द प्राप्त होता है । फिर हमें तो तुमने अपनी मधुर हँसी, प्रेमभरी दृष्टि तथा लीला-विहारका सुख प्रदान किया था; एकान्तमें हमारे साथ हृदयस्पर्शी विनोद तथा प्रेमभरी संकेत-चेष्टाएँ की थीं। अरे छलिया ! आज वे ही तुम हमलोगोंसे छिप

गये हो। तुम्हारी वे सभी प्रेमभरी बातें इस समय याद आ रही हैं और हमारे मनको क्षुब्ध कर रही हैं ॥ १० ॥

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥ ११ ॥

चलसि, यत्, व्रजात्, चारयन्, पशून्, नलिनसुन्दरम्, नाथ, ते, पदम्, शिलतृणाङ्कुरैः, सीदति, इति, नः, कलिलताम्, मनः, कान्त, गच्छति ॥ ११ ॥

नाथ = हे नाथ !
कान्त = हे कान्त !
यत् = जब (तुम)
पशून् = (गौ आदि) पशुओंको
चारयन् = चराते हुए
व्रजात् = व्रजसे (वनकी ओर)
चलसि = चलकर आते हो, (उस समय)
नलिन-सुन्दरम् = (अरुणिमा, मृदुता एवं सौरभमें) पद्मके समान सुन्दर
ते = तुम्हारे
पदम् = चरण
शिल-तृणाङ्कुरैः = धान्यके अग्रभाग, घास एवं अङ्कुरोंसे
सीदति = व्यथित हो रहे हैं,
इति = इस (भावनासे)
नः = हमलोगोंका
मनः = मन
कलिलताम् गच्छति = पीड़ित होने लगता है (यह अवस्था दिनमें वनगमनके समय होती है। अभी तो रात्रि है। इस समय

तुम्हारे सुकोमल चरणोंको कितना कष्ट हो रहा होगा—	इस चिन्तासे हम मरी जा रही हैं, आकर हमें बचा लो)

हमारे प्राणनाथ, जीवनसर्वस्व ! तुम्हारे चरण अरुणिमा, मृदुता तथा दिव्य सुगन्धमें कमलके समान अत्यन्त सुन्दर हैं; जिस समय तुम गौओंको चराते हुए व्रजसे वनकी ओर ~~जा~~ आते हो, उस समय यह सोचकर कि तुम्हारे उन अत्यन्त मृदु चरण-कमलोंमें कुश, काँटे, अङ्कुर तथा कंकड़ आदि गड़ते होंगे और बड़ी पीड़ा होती होगी, हमलोगोंके मनमें बड़ी ही व्यथा होती है। यह दशा तो दिनमें वनगमनके समय होती है। इस रात्रिके समय तो उन मृदुल चरणोंमें विशेष पीड़ा हो रही होगी—इस चिन्तासे हमारे प्राण निकले जा रहे हैं। तुम तुरंत यहाँ आकर उनकी रक्षा करो ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलै-
र्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहु-
र्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

दिनपरिक्षये, नीलकुन्तलैः, वनरुहाननम्, बिभ्रत्, आवृतम्, घनरजस्वलम्, दर्शयन्, मुहुः, मनसि, नः, स्मरम्, वीर, यच्छसि ॥

वीर = हे वीर !
दिनपरिक्षये = सायंकालमें
नीलकुन्तलैः = नील केशपाशसे
आवृतम् = आच्छादित,
घनरजस्वलम् = गोधनकी धूलिसे धूसरित,
वनरुहाननम् = मुखारविन्दको
बिभ्रत् = धारण करते हुए (तथा उसका)
मुहुः = पुनः-पुनः (हमें)
दर्शयन् = दर्शन कराते हुए (तुम)

नः	= हमलोगोंके	स्मरम्	= प्रेमका
मनसि	= मनमें	यच्छसि	= संचार कर देते हो

हमारे हृदयोंको प्रेमबाणसे बींध देनेमें तुम बड़े ही शूरवीर हो। संध्याके समय जब तुम वनसे लौटते हो, तब हम देखती हैं कि तुम्हारे मुख-सरोजपर नीली घुँघराली अलकावली छायी हुई है और वह गोधूलिसे धूसरित हो रहा है। उस समय तुम अपनी उस मुख-माधुरीके हमें बार-बार दर्शन कराकर हमारे मनमें प्रेम-व्यथाका संचार कर देते हो। इस प्रकार नित्य ही तुम हमारे हृदयोंको प्रेमबाणसे बींधा करते हो; पर आज तो उसकी चरम सीमा हो गयी है—पहले तो हमें वेणुगान करके अपने पास बुलाया, हमारे साथ लीला-विहार किया और फिर यों छोड़कर चले गये! ॥ १२ ॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं
धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपङ्कजं शंतमं च ते
रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥

प्रणतकामदम्, पद्मजार्चितम्, धरणिमण्डनम्, ध्येयम्, आपदि, चरणपङ्कजम्, शंतमम्, च, ते, रमण, नः, स्तनेषु, अर्पय, आधिहन् ॥ १३ ॥

(अतः)

आधिहन्	= हे मनकी व्यथा हरनेवाले!	प्रणत-कामदम्	= शरणागत प्राणियोंके समस्त अभीष्ट पूर्ण करनेवाले,
रमण	= रमण! (बहुत हो चुका, अब छल-कपट छोड़कर हमारी प्रार्थना सुन लो)	पद्मजार्चितम्	= ब्रह्माके द्वारा (नित्य) पूजित
		आपदि	= विपत्तिके समय

ध्येयम्	= ध्यान किये जाने योग्य—ध्यानमात्रसे विपत्ति हर लेनेवाले	धरणिमण्डनम्	= पृथ्वीके भूषणरूप
		ते	= तुम्हारे—(अपने)
		चरणपङ्कजम्	= चरणारविन्दको
शंतमम्	= (सेवाके समय भी) परम सुखदायक	नः	= हम सबोंके
		स्तनेषु	= वक्षःस्थलपर
च	= तथा	अर्पय	= स्थापित कर दो

परंतु प्रियतम ! हमारे मनकी सारी व्यथाका हरण करनेवाले भी एकमात्र तुम्हीं हो । तुम्हारे चरण-कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं । स्वयं ब्रह्माजी उनका नित्य पूजन करते हैं । विपत्तिके समय ध्यानमात्रसे ही वे समस्त विपत्तियोंका नाश कर देते हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं । उन अपने चरण-सरोजोंको, हे विहार-सुख देनेवाले प्रियतम ! हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी सारी व्यथाका नाश कर दो ॥ १३ ॥

सुरतवर्धनं शोकनाशनं
स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां
वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

सुरतवर्धनम्, शोकनाशनम्, स्वरितवेणुना, सुष्ठु, चुम्बितम्, इतररागविस्मारणम्, नृणाम्, वितर, वीर, नः, ते, अधरामृतम् ॥

वीर	= हे वीर !	स्वरितवेणुना	= नादित हुए वेणुके द्वारा
सुरतवर्धनम्	= दिव्य सम्भोगरसको बढ़ानेवाली	सुष्ठु	= सुन्दररूपसे
शोकनाशनम्	= समस्त शोकोंका शमन कर देनेवाली	चुम्बितम्	= स्पृष्ट हुई
		नृणाम्	= मनुष्य (मात्र) की

इतरराग विस्मारणम्	= अन्य समस्त इच्छाओंकी विस्मृति करा देनेवाली	अधरामृतम्	= अधरसुधाका
		नः	= हमें (भी)
ते	= अपनी	वितर	= दान करो

हृदयकी व्यथाका हरण करनेमें समर्थ वीरशिरोमणे ! तुम्हारी अधर-सुधा दिव्य सम्भोग-रसको बढ़ानेवाली है, तुरंत ही समस्त शोक-संतापोंका शमन करनेवाली है, सुन्दर स्वरोंमें गान करनेवाली बाँसुरी उसे सदा भलीभाँति चूमती रहती है। जिसने एक क्षणके लिये एक बिन्दुमात्र भी कभी उसका पान कर लिया, उसकी अन्य समस्त आसक्तियाँ तथा कामनाएँ सदाके लिये विस्मृत हो जाती हैं, ऐसी अपनी वह अधरसुधा हमलोगोंमें वितरण कर दो—हम सबको पिलाकर कृतार्थ करो ॥ १४ ॥

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम् ॥ १५ ॥

अटति, यत्, भवान्, अह्नि, काननम्, त्रुटिः, युगायते, त्वाम्, अपश्यताम्, कुटिलकुन्तलम्, श्रीमुखम्, च, ते, जडः, उदीक्षताम्, पक्ष्मकृत्, दृशाम् ॥१५॥

	(हमारे प्रियतम !)	अपश्यताम्	= न देख पानेवाली (हम गोपियोंके लिये)
यत्	= जब		
भवान्	= तुम		
अह्नि	= दिनके समय (गोचारणके लिये)	त्रुटिः	= आधे क्षणका समय (भी)
काननम्	= वनकी ओर		
अटति	= चले जाते हो, (उस समय)	युगायते	= युगके समान बन जाता है
त्वाम्	= तुम्हें	च	= तथा

	(संध्याके समय वनसे लौटते हुए)		(पलक गिरनेके) कालका तुम्हारा अदर्शन असह्य होकर हमें यह प्रतीत होने लगता है कि)
ते	= तुम्हारे	दृशाम्	= नेत्रोंकी
कुटिल-कुन्तलम्	= कुञ्चित केश-समन्वित	पक्ष्मकृत्	= बरुनी (पलकें) बनानेवाला (ब्रह्मा)
श्रीमुखम्	= श्रीमुखका	जडः	= मूर्ख है
उदीक्षताम्	= दर्शन करनेवाली हम सबकी (यह धारणा बन जाती है, निमेष-		

प्रियतम ! दिनके समय जब तुम गौएँ चरानेके लिये वनमें चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारा आधे क्षणका समय भी युग बन जाता है। फिर जब संध्याके समय तुम वनसे लौटते हो, तब तुम्हारे घुँघराले केशोंसे सुशोभित श्रीमुखका हम दर्शन करती हैं। उस समय पलकोंका गिरना हमें असह्य हो जाता है; क्योंकि उतने समयतक तुम्हारे दर्शनसे नेत्र वञ्चित रहते हैं। इसलिये हमें जान पड़ता है कि नेत्रोंपर पलकें बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥ १५ ॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-
नतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्, अतिविलङ्घ्य, ते, अन्ति, अच्युत, आगताः, गतिविदः, तव, उद्गीतमोहिताः, कितव, योषितः, कः, त्यजेत्, निशि ॥ १६ ॥

अच्युत	= हे अच्युत !	अन्ति	= निकट
गतिविदः	= (हमारे) आगमन-का कारण जानने-वाले (परम चतुर)	आगताः	= आयी हैं (फिर भी तुम हमें छोड़कर चले गये।)
तव	= तुम्हारे	कितव	= हे कपटी !
उद्गीत-मोहिताः	= उच्च वेणुगीतसे मोहित हुई (हम सब अपने)	निशि	= रात्रिके समय (इस प्रकार शरणमें आयी)
पतिसुतान्वय-भ्रातृबान्धवान्	= पति, पुत्र, स्वजन, भाई, बन्धुगणको	योषितः	= कामिनियोंको (तुम्हारे अतिरिक्त और)
अतिविलङ्घ्य	= अतिक्रम—परित्याग करके	कः	= कौन
ते	= तुम्हारे	त्यजेत्	= छोड़ सकता है? (कोई नहीं।)

प्रियतम ! तुम कभी अपने प्रेममय स्वभावसे च्युत नहीं होते। तुम चतुर-शिरोमणि भलीभाँति जानते हो कि हम सब तुम्हारे मधुरतम मुरलीगानसे मोहित होकर अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु, कुल-परिजन—सबका त्याग करके उनकी इच्छाका अतिक्रमण करके तुम्हारे पास आयी हैं। फिर भी तुम हमें छोड़कर चले गये। अरे कपटी! इस प्रकारकी घोर रात्रिके समय शरणमें आयी हुई तरुणियोंको तुम्हारे अतिरिक्त और कौन त्याग सकता है॥ १६॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं
प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

रहसि, संविदम्, हृच्छयोदयम्, प्रहसिताननम्, प्रेमवीक्षणम्,

बृहत्, उरः, श्रियः, वीक्ष्य, धाम, ते, मुहुः, अतिस्पृहा, मुह्यते, मनः ॥ १७ ॥

ते	=तुम्हारा	वीक्ष्य	=देखकर— (स्मरण करके)
रहसि	=एकान्तमें होनेवाला		(तुमसे मिलनेकी)
संविदम्	=प्रेमालाप (तुम्हारा)	अतिस्पृहा	=अतिशय लालसा बढ़ गयी है
हृच्छयोदयम्	=प्रेमसंचारक		(और इसलिये हमारे प्रियतम ! हमारा)
प्रहसिताननम्	=हास्यसमन्वित मुख	मनः	=मन
प्रेमवीक्षणम्	=प्रेमभरी चितवन	मुहुः	=बारंबार
श्रियः	=रमाका	मुह्यते	=मुग्ध हो रहा है
धाम	=निवासभूत (तुम्हारा)		
बृहत्	=विशाल		
उरः	=वक्षःस्थल (इन सबको)		

प्रियतम ! तुमने एकान्तमें हमसे प्रेमभरी बातें की हैं, तुम्हारा वह प्रेमालाप, प्रेमकी कामनाको उद्दीप्त करनेवाला तुम्हारा मुसकाता हुआ मुख-कमल, तुम्हारी प्रेमभरी तिरछी चितवन, लक्ष्मीजीका नित्यनिवासधाम तुम्हारा विशाल वक्षःस्थल—इन सभीको देखकर, इनका स्मरण करके हमारी तुमसे मिलनेकी लालसा अत्यन्त बढ़ गयी है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध हो रहा है ॥ १७ ॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां
स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८॥

व्रजवनौकसाम्, व्यक्तिः, अङ्ग, ते, वृजिनहन्त्री, अलम्, विश्वमङ्गलम्, त्यज, मनाक्, च, नः, त्वत्स्पृहात्मनाम्, स्वजनहृद्रुजाम्, यत्, निषूदनम् ॥ १८ ॥

अङ्ग	= हे श्रीकृष्णचन्द्र !	त्वत्स्पृहा-त्मनाम्	= एकमात्र तुममें ही अपनी समस्त इच्छाओंको केन्द्रित कर देनेवाली
ते	= तुम्हारा	नः	= हम (सबों) को
व्यक्तिः	= आविर्भाव	च	= भी
व्रजवनौ-कसाम्	= व्रजवासियोंके	मनाक्	= किञ्चिन्मात्र (वह वस्तु)
वृजिनहन्त्री	= दुःखको मिटाने-वाला है	त्यज	= दो
		यत्	= जो
अलम् विश्वमङ्गलम्	= (सबके लिये) परममङ्गलस्वरूप है। (इसलिये)	स्वजन-हृद्रुजाम्	= तुम्हारे स्वजनोंके समस्त हृद्रोगोंको
		निषूदनम्	= नष्ट करनेवाली है

प्रियतम श्यामसुन्दर ! तुम्हारा यह व्रजमें आविर्भाव व्रजवासियोंके समस्त दुःखोंका नाश करने और विश्वका परम कल्याण करनेके लिये है। हमारे हृदयके समस्त मनोरथ एकमात्र तुम्हींमें केन्द्रित हो गये हैं, हम तुम्हारे सिवा और कुछ चाहतीं ही नहीं। हम तुम्हारी अपनी ही हैं; हमें अब थोड़ी-सी वह वस्तु दो, जो तुम्हारे निजजनोंके हृदयरोगोंको सर्वथा नष्ट कर दे ॥ १८ ॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

यत्, ते, सुजातचरणाम्बुरुहम्, स्तनेषु, भीताः, शनैः, प्रिय, दधीमहि, कर्कशेषु, तेन, अटवीम्, अटसि, तत्, व्यथते, न, किम्, स्वित्, कूर्पादिभिः, भ्रमति, धीः, भवदायुषाम्, नः ॥ १९ ॥

प्रिय = मेरे प्रियतम ! (तुम्हारे चरणोंमें कहीं व्यथा न हो जाय, इस आशङ्कासे)
भीताः = डरी हुई (हम सब)
ते = तुम्हारे
यत् = जिन
सुजातचरणाम्बुरुहम् = अति सुकुमार चरण-कमलोंको (अपने)
कर्कशेषु = कठोर
स्तनेषु = वक्ष:स्थलपर
शनैः = धीरेसे
दधीमहि = धारण किया करती हैं;
तेन = उन्हीं सुकुमार चरणके द्वारा (तुम आज)
अटवीम् = वनमें
अटसि = घूम रहे हो (तुम्हारे)
तत् = वे (सुकुमार चरण-पद्म)
कूर्पादिभिः = छोटे-छोटे कंकड़ आदिसे
किम् स्वित् = क्या
न व्यथते = पीड़ित नहीं हो रहे हैं ? (अवश्य हो रहे हैं। तथा इसी चिन्तासे)
भवदायुषाम् = तुम्हींको अपना जीवनस्वरूप अनुभव करनेवाली
नः = हम (सबों) की
धीः = बुद्धि
भ्रमति = चक्कर खा रही है (यह कहकर प्रेमसे अतिशय विह्वल हुई गोपसुन्दरियाँ उच्च कण्ठसे रोने लगीं)

प्रियतम ! तुम्हारे चरणकमल अत्यन्त सुकुमार हैं, हम उन्हें अपने उरोजोंपर भी बहुत ही धीरेसे रखती हैं; हमें डर लगता रहता है कि हमारे कठोर उरोजोंसे उन कोमल पद-कमलोंको कहीं चोट न लग जाय। उन्हीं सुकुमार चरणोंसे आज हमसे छिपकर तुम वन-वन भटक रहे हो। कंकड़-पत्थरोंकी नोक लगकर उनमें बड़ी पीड़ा हो रही होगी। हमारी बुद्धि इसी चिन्तासे व्याकुल होकर चक्कर खा रही है। प्यारे ! हमारे जीवनके जीवन तो एकमात्र तुम्हीं हो ॥ १९ ॥

॥ तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

चौथा अध्याय

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ।

रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच

इति, गोप्यः, प्रगायन्त्यः, प्रलपन्त्यः, च, चित्रधा,
रुरुदुः, सुस्वरम्, राजन्, कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—

राजन्	= हे राजा (परीक्षित्)!	कृष्णदर्शन-लालसाः	= श्रीकृष्णको देखनेकी लालसासे (युक्त होकर)
गोप्यः	= गोपियाँ		
इति	= इस प्रकार		
चित्रधा	= अनेक तरहसे		
प्रगायन्त्यः	= गाती	सुस्वरम्	= करुणापूर्ण सुस्वरसे फूट-फूटकर
च	= और		
प्रलपन्त्यः	= प्रलाप करती हुई	रुरुदुः	= रोने लगीं

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजा परीक्षित् ! भगवान् श्यामसुन्दरके विरहमें गोपियाँ इस प्रकार विविध भाँतिसे गाती और प्रलाप करती हुई, प्राण-मनको सर्वथा आकर्षित कर लेनेवाले उन प्रियतमके दर्शनकी लालसा लिये हुए करुणापूर्ण मधुर स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ १ ॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

तासाम्, आविरभूत्, शौरिः, स्मयमानमुखाम्बुजः, पीताम्बरधरः, स्रग्वी, साक्षात्, मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

साक्षात् = स्वयं

मन्मथ-मन्मथः = कामदेवके भी मनको मथित करनेवाले

शौरिः = शूरसेनके वंशज (भगवान् श्रीकृष्ण)

पीताम्बर-धरः = पीताम्बर धारण किये

(तथा)

स्रग्वी = वनमाला पहने हुए

स्मयमान-मुखाम्बुजः = मधुर मुसकान-युक्त मुखकमलसे

तासाम् = उनके बीचमें (उसी समय)

आविरभूत् = प्रकट हो गये

उसी समय उनके बीचमें शूरसेनके वंशज भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनके मुख-सरोजपर मधुर मुसकान खेल रही थी, वे गलेमें वनमाला और शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका रूप-सौन्दर्य सबके मनको मथ डालनेवाले स्वयं कामदेवके मनको भी मथ डालनेवाला था ॥ २ ॥

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः।
उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥

तम्, विलोक्य, आगतम्, प्रेष्ठम्, प्रीत्युत्फुल्लदृशः, अबलाः, उत्तस्थुः, युगपत्, सर्वाः, तन्वः, प्राणम्, इव, आगतम् ॥ ३ ॥

तम् = उन

प्रेष्ठम् = प्रियतम (श्रीकृष्ण) को

आगतम् = आया हुआ

विलोक्य = देखकर

प्रीत्युत्फुल्ल-दृशः = आनन्दसे खिले हुए नेत्रोंवाली

अबलाः = (वे) गोपियाँ

सर्वाः = सब-की-सब

युगपत् = एक साथ

उत्तस्थुः	= (उसी प्रकार) उठ खड़ी हुईं,	तन्वः	= शरीर
		आगतम्	= लौटे हुए
इव	= जैसे	प्राणम्	= प्राणको (देखकर) (उठ खड़े हों)

उन सौन्दर्य-माधुर्य-निधि प्रियतम श्यामसुन्दरको अपने बीचमें आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेमानन्दसे खिल उठे। वे गोपियाँ सब-की-सब एक साथ ही इस प्रकार उठ खड़ी हुईं, जैसे प्राणहीन शरीर प्राणोंके लौटते ही उठ खड़ा हो ॥ ३ ॥

काचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ।
काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनरूषितम् ॥ ४ ॥

काचित्, कराम्बुजम्, शौरेः, जगृहे, अञ्जलिना, मुदा,
काचित्, दधार, तद्बाहुम्, अंसे, चन्दनरूषितम् ॥ ४ ॥

काचित्	= (उनमेंसे) किसीने	काचित्	= किसीने
मुदा	= आनन्दसे	चन्दन-रूषितम्	= चन्दनसे चर्चित
शौरेः	= भगवान् श्रीकृष्णके		
कराम्बुजम्	= हस्त-कमलको	तद्बाहुम्	= उनकी भुजा
अञ्जलिना	= (अपने) जुड़े हुए हाथोंसे	अंसे	= (अपने) कंधेपर
जगृहे	= पकड़ लिया	दधार	= रख ली

उनमेंसे किसी गोपीने प्रमुदित होकर भगवान् श्यामसुन्दरके कर-कमलको अपने हाथोंमें ले लिया। किसीने उनकी चन्दनसे चर्चित भुजाको अपने कंधेपर रख लिया ॥ ४ ॥

काचिदञ्जलिनागृह्णात् तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ।
एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

काचित्, अञ्जलिना, अगृह्णात्, तन्वी, ताम्बूलचर्वितम्,
एका, तदङ्घ्रिकमलम्, संतप्ता, स्तनयोः, अधात् ॥ ५ ॥

काचित्	= किसी	संतप्ता	= (विरहसे) तप्त हुई बालाने
तन्वी	= कृशाङ्गीने		
ताम्बूल-चर्वितम्	= उनका चबाया हुआ पान	तदङ्घ्रि-कमलम्	= उनके चरण-कमलको
अञ्जलिना	= दोनों हाथोंमें	स्तनयोः	= (अपने) कुचोंपर
अगृह्णात्	= ले लिया		
एका	= (और किसी) एक	अधात्	= रख लिया

किसी सुन्दरी गोपीने उनका चबाया हुआ पान अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और किसी एक गोपीने, जिसके हृदयमें विरहकी आग धधक रही थी, उसे शान्त करनेके लिये भगवान्के चरण-कमलको अपने वक्षःस्थलपर रख लिया ॥ ५ ॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ।
घ्नतीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

एका, भ्रुकुटिम्, आबध्य, प्रेमसंरम्भविह्वला,
घ्नती, इव, ऐक्षत, कटाक्षेपैः, संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥

एका	= एक (गोपी)	संदष्ट-दशनच्छदा	= (दाँतोंसे) होठ दबाकर
प्रेमसंरम्भ-विह्वला	= प्रणय-कोपके वशीभूत होकर	कटाक्षेपैः	= कटाक्षोंसे
		घ्नती इव	= बींधती हुई-सी
भ्रुकुटिम्	= (धनुषके समान टेढ़ी) भौंहोंको	ऐक्षत	= (उनकी ओर) देखने लगी
आबध्य	= चढ़ाकर		

एक व्रजसुन्दरी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, अपनी धनुषके समान टेढ़ी भौंहोंको चढ़ाकर और दाँतोंसे होठ दबाकर अपने कटाक्षरूपी बाणोंसे बींधती हुई-सी उनकी ओर ताकने लगी ॥ ६ ॥

अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ।
आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥

अपरा, अनिमिषदृग्भ्याम्, जुषाणा, तन्मुखाम्बुजम्, आपीतम्, अपि, न, अतृप्यत्, सन्तः, तच्चरणम्, यथा ॥ ७ ॥

अपरा	=(एक) और गोपी	**अपि**	=भी
आपीतम्	=बार-बार सब ओरसे (दृष्टिद्वारा) पान किये हुए	**न**	=नहीं
		अतृप्यत्	=तृप्त होती थी
		यथा	=जैसे
तन्मुखाम्बुजम्	=उन (भगवान्)के मुख-कमलको	**सन्तः**	=संतलोग (शान्त एवं दासभक्त)
अनिमिषदृग्भ्याम्	=अपलक नेत्रोंसे	**तच्चरणम्**	=उनके चरणोंका दर्शन करके (तृप्त नहीं होते)
जुषाणा	=निहारती हुई		

एक गोपी नेत्ररूपी प्यालोंसे श्रीकृष्णके मुख-कमल-मकरन्दका पान करके भी—भगवान्के सुन्दर वदन-सरोजको बार-बार देखकर भी फिर अपलक नेत्रोंसे वैसे ही अतृप्त होकर देखने लगी, जैसे शान्त एवं दासभक्त भगवान्के श्रीचरणोंका बार-बार दर्शन करनेपर भी तृप्त नहीं होते और उन्हें निरन्तर देखते ही रहना चाहते हैं ॥ ७ ॥

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ।
पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

तम्, काचित्, नेत्ररन्ध्रेण, हृदिकृत्य, निमील्य, च, पुलकाङ्गी, उपगुह्य, आस्ते, योगी, इव, आनन्दसम्प्लुता ॥ ८ ॥

काचित्	= कोई एक (व्रज-बाला)	उपगुह्य	= (भीतर ही भीतर उन्हें) छातीसे लगाकर
तम्	= उन (भगवान्)को		
नेत्ररन्ध्रेण	= नेत्रोंके छिद्र(द्वार)से	योगी इव	= योगीकी भाँति
हृदिकृत्य	= हृदयमें ले जाकर	आनन्द-संप्लुता	= परमानन्दमें निमग्न
च	= और	पुलकाङ्गी	= (एवं) रोमाञ्चित
निमील्य	= नेत्रोंको बंद करके	आस्ते	= हो गयी

कोई एक व्रजसुन्दरी नेत्रोंके मार्गसे श्यामसुन्दरको अपने हृदयमें ले गयी और फिर नेत्रोंको बंद करके भीतर-ही-भीतर उनको हृदयसे लगाकर वैसे ही परमानन्दमें निमग्न एवं रोमाञ्चित हो गयी, जैसे योगी अपने इष्ट परमात्माको ध्यानके द्वारा प्राप्तकर उसमें निमग्न हो जाते हैं ॥ ८ ॥

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ।
जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥

सर्वाः, ताः, केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः, जहुः, विरहजम्, तापम्, प्राज्ञम्, प्राप्य, यथा, जनाः ॥ ९ ॥

केशवालोक-परमोत्सव-निर्वृताः	= श्रीकृष्णदर्शनके परमोल्लाससे आनन्दित होकर	जहुः	= परित्याग कर दिया
		यथा	= जैसे
		जनाः	= (मुमुक्षु) जन
ताः	= उन	प्राज्ञम्	= परमप्राज्ञ (ब्रह्म) को
सर्वाः	= सब (गोपबालाओं)ने	प्राप्य	= प्राप्तकर (संसार-तापसे मुक्त हो जाते हैं)
विरहजम्	= विरहसे उत्पन्न		
तापम्	= तापको		

जैसे मुमुक्षु साधक ब्रह्मको प्राप्त करके समस्त संसार-तापसे सर्वथा मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही वे सब व्रजसुन्दरियाँ श्रीकृष्णके मधुर दर्शनसे

परम उल्लास और दिव्य आनन्दको प्राप्त हो गयीं तथा उन्होंने विरहसे उत्पन्न संतापका सर्वथा परित्याग कर दिया ॥ ९ ॥

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ।
व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥

ताभिः, विधूतशोकाभिः, भगवान्, अच्युतः, वृतः, व्यरोचत, अधिकम्, तात, पुरुषः, शक्तिभिः, यथा ॥ १० ॥

विधूतशोकाभिः	= शोकसे मुक्त हुई	अधिकम्	= (उसी प्रकार) अत्यन्त
ताभिः	= उन गोप-रमणियोंसे	व्यरोचत	= सुशोभित हुए
वृतः	= घिरे हुए	यथा	= जैसे
भगवान्	= भगवान् (षडैश्वर्यसम्पन्न)	शक्तिभिः	= शक्तियोंसे (घिरे हुए)
अच्युतः	= अपने स्वरूपमें सदा स्थित रहनेवाले (श्रीकृष्ण)	पुरुषः	= परात्पर पुरुष (परमात्मा) सुशोभित होते हैं
तात	= प्यारे (परीक्षित्)		

अपने दिव्य-सौन्दर्य-माधुर्ययुक्त सच्चिदानन्दघन स्वरूपमें नित्य स्थित, षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण आज विरह-विषादसे मुक्त गोपियोंके बीचमें और भी विशेष सुशोभित होने लगे, जैसे परात्पर पुरुष परमात्मा प्रत्यक्षरूपमें अपनी ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे घिरकर सुशोभित होते हैं ॥

ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ।
विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

ताः, समादाय, कालिन्द्याः, निर्विश्य, पुलिनम्, विभुः, विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥

विभुः	= भगवान् (श्रीकृष्ण)	विकसत्कुन्द-मन्दारसुरभ्य-निलषट्पदम्	= जहाँ खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंसे सुगन्धित वायु चल रही थी और उससे प्रेरित होकर भौंरे उड़ रहे थे
ताः	= उन (समस्त गोपललनाओं) को		
समादाय	= साथ लेकर		
कालिन्द्याः	= यमुनाजीके		
पुलिनम्	= (उस) तीरपर		
निर्विश्य	= आ विराजे		

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण उन समस्त गोप-ललनाओंको साथ लेकर यमुनाजीके पावन पुलिनपर आ विराजे । उस समय वहाँ खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुगन्धिको लिये वायु चल रही थी और उससे मतवाले हुए भ्रमर सर्वत्र उड़ रहे थे ॥ ११ ॥

शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ।
कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः, शिवम्;
कृष्णायाः, हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥

शरच्चन्द्रांशु-संदोहध्वस्त-दोषातमः शिवम्	= शारदीय चन्द्रमाके किरणजालोंसे रात्रिका अन्धकार दूर हो जानेके कारण जो मङ्गलमय हो रहा था, तथा	कृष्णायाः	= श्रीयमुनाजीके
		हस्ततरला-चितकोमल-वालुकम्	= तरङ्गरूपी हाथोंसे जहाँ कोमल वालुका बिछायी हुई थी

शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणें सब ओर छिटक रही थीं, इससे रात्रिका अन्धकार सर्वथा मिट गया था और सारा वातावरण मङ्गलमय

हो रहा था। श्रीयमुनाजीने भगवान्‌की मधुरलीलाके लिये अपने तरङ्गरूपी हाथोंसे वहाँ सुकोमल वालुका बिछा रखी थी ॥ १२ ॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो
मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितै-
रचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजः, मनोरथान्तम्, श्रुतयः, यथा, ययुः, स्वैः, उत्तरीयैः, कुचकुङ्कुमाङ्कितैः, अचीक्लृपन्, आसनम्, आत्मबन्धवे ॥ १३ ॥

तद्दर्शनाह्लाद-विधूतहृद्रुजः	= उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के दर्शनजनित आनन्दसे जिनके हृदयकी पीड़ा शान्त हो गयी थी (ऐसी वे गोपियाँ)	आत्मबन्धवे	= (और उन्होंने) अपने प्रिय बन्धु (भगवान् श्रीकृष्णके बैठनेके लिये)
		कुच-कुङ्कुमाङ्कितैः	= कुचोंपर लेप की हुई केसरके चिह्नोंसे युक्त
मनोरथान्तम् ययुः	= (उसी प्रकार) पूर्णकाम हो गयीं	स्वैः	= अपनी
यथा	= जैसे	उत्तरीयैः	= ओढ़नेकी चादरोंसे
श्रुतयः	= (ज्ञानकाण्डकी) श्रुतियाँ (पूर्णकाम हो गयीं)	आसनम्	= आसन
		अचीक्लृपन्	= बनाया

भगवान् श्यामसुन्दरके दर्शनसे उन गोपसुन्दरियोंको इतना महान् आनन्द हुआ कि उनके हृदयकी सारी व्यथा मिट गयी। वे गोपियाँ भगवान्‌को पाकर उसी प्रकार पूर्णकाम हो गयीं, जिस प्रकार श्रुतियाँ कर्मकाण्डके वर्णनके अनन्तर ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करके पूर्णकाम हो जाती हैं। अब उन्होंने वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरसे चिह्नित अपनी ओढ़नीको अपने परम प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके विराजनेके लिये वहाँ बिछा दिया ॥ १३ ॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो
योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ।
चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चित-
स्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४ ॥

तत्र, उपविष्टः, भगवान्, सः, ईश्वरः, योगेश्वरान्तर्हृदि, कल्पितासनः, चकास, गोपीपरिषद्गतः, अर्चितः, त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदम्, वपुः, दधत् ॥ १४ ॥

योगेश्वरान्तर्हृदि	= योगेश्वरोंके अन्तःकरण (हृदय-कमल)में	**गोपीपरिषद्गतः**	= गोपियोंके समाजसे घिरकर
		उपविष्टः	= बैठे हुए
कल्पितासनः	= जिनका आसन भावनासे स्थिर किया जाता है	**अर्चितः**	= (तथा उनसे) पूजित होकर
सः	= वे	**त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदम्**	= त्रिलोकीकी शोभाके एकमात्र आश्रयरूप
ईश्वरः	= सर्वसमर्थ—सर्वेश्वर		
भगवान्	= श्रीकृष्ण	**वपुः**	= शरीरको
तत्र	= वहाँ (यमुना-पुलिनकी वालुकामें)	**दधत्**	= धारण किये हुए
		चकास	= सुशोभित हुए

बड़े-बड़े योगेश्वर अपने विशुद्ध हृदय-कमलमें जिन भगवान्के आसनकी कल्पना किया करते हैं, पर बैठा नहीं पाते, वे ही सर्वसमर्थ सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण यमुना-तटकी वालुकामें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये। गोपियोंने उन्हें सब ओरसे घेर लिया और उनकी पूजा करने लगीं। त्रिलोकीकी समस्त सौन्दर्य-शोभाके जो एकमात्र परम आश्रय हैं, ऐसे अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्यमय दिव्य विग्रहको धारण किये उस समय वे अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥ १४ ॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं
सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।
संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः
संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥

सभाजयित्वा, तम्, अनङ्गदीपनम्, सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा, संस्पर्शनेन, अङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः, संस्तुत्य, ईषत्कुपिताः, बभाषिरे ॥ १५ ॥

सहास-लीलेक्षण-विभ्रमभ्रुवा	= मुसकानयुक्त लीला-कटाक्ष तथा भौंहोंकी मटकसे (एवं)	**अनङ्ग-दीपनम्**	= (अपने अंदर) विशुद्ध काम—प्रेमका उद्दीपन करनेवाले
अङ्ककृता-ङ्घ्रिहस्तयोः	= (अपनी) गोदमे रक्खे हुए उनके चरणों तथा हाथोंके	**तम् सभाजयित्वा**	= उन (श्रीकृष्ण) का सम्मान करके
संस्पर्शनेन	= स्पर्शसे	**संस्तुत्य**	= (तथा) उनकी प्रशंसा करके
ईषत्कुपिताः	= किंचित् प्रणय-कोप दिखाते हुए	**बभाषिरे**	= (वे गोपियाँ) बोलीं

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी सौन्दर्य-सुधा पिलाकर जिनके मनमें विशुद्ध काम—भगवत्प्रेमको उद्दीप्त कर दिया था, वे गोपियाँ अपनी मधुर मुसकान, विलासपूर्ण कटाक्ष तथा भौंहोंकी मटकसे एवं अपनी गोदमें रक्खे हुए भगवान्के चरण-कमलों और कर-कमलोंको सहलाकर उनका सम्मान करती हुई आनन्दातिरेकसे उनके रूप-गुणोंकी प्रशंसा करने लगीं। फिर उनके अन्तर्धान होनेकी बात याद आते ही किंचित् प्रणय-कोप दिखाती हुई वे बोलीं ॥ १५ ॥

गोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥

गोप्यः ऊचुः

भजतः, अनुभजन्ति, एके, एके, एतद्विपर्ययम्, न, उभयान्, च, भजन्ति, एके, एतत्, नः, ब्रूहि, साधु, भोः ॥ १६॥

गोपियोंने कहा—

एके	= कुछ लोग (तो)	**एके**	= कुछ (तीसरे प्रकारके) लोग
भजतः	= प्रेम करनेवालोंसे	**उभयान्**	= (प्रेम करनेवाले और न करनेवाले) दोनोंसे (ही)
अनुभजन्ति	= बदलेमें प्यार करते हैं	**न भजन्ति**	= प्रेम नहीं करते,
एके	= (और) कुछ लोग	**भोः**	= हे प्यारे
एतद् विपर्ययम्	= इसके विपरीत आचरण करते हैं (अर्थात् प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं)	**एतत्**	= इस (विषय) को
		नः	= हमसे
		साधु	= भलीभाँति
च	= और	**ब्रूहि**	= कहो

गोपियोंने कहा—कुछ लोग तो प्रेम करनेवालोंसे ही बदलेमें प्रेम करते हैं; कुछ लोग इसके विपरीत, प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवाले तथा न करनेवाले—दोनों-से ही प्रेम नहीं करते। प्रियतम! इन तीनोंके विषयमें हमें समझाकर बतलाओ। यह बतलाओ कि तुम इनमेंसे किसको अच्छा समझते हो और तुम कौन-से हो? ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते।
न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥१७॥

श्रीभगवान् उवाच

मिथः, भजन्ति, ये, सख्यः, स्वार्थैकान्तोद्यमाः, हि, ते,
न, तत्र, सौहृदम्, धर्मः, स्वार्थार्थम्, तत्, हि, न, अन्यथा॥१७॥

श्रीभगवान्‌ने उत्तर दिया—

सख्यः	= हे सखियो!	**न**	= न (तो)
ये	= जो लोग	**सौहृदम्**	= सौहार्द (होता है)
मिथः	= परस्पर (दूसरेके प्रेमके बदलेमें)	**धर्मः**	= (न) धर्म (कर्तव्य-का भाव ही होता है)
भजन्ति	= प्रेम करते हैं		
ते	= वे (तो)	**तत्**	= (उनकी) वह (प्रेमकी चेष्टा)
हि	= निस्संदेह		
स्वार्थैका-न्तोद्यमाः	= केवल स्वार्थके लिये ही प्रेमकी चेष्टा करते हैं	**स्वार्थार्थम्**	= स्वार्थके हेतु
		हि	= ही (होती है)
		अन्यथा	= और किसी हेतुसे
तत्र	= उनमें	**न**	= नहीं

इसके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय सखियो ! जो लोग प्रेम करनेपर ही बदलेमें प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्यम केवल स्वार्थके लिये ही है। उनमें न तो सौहार्द है और न धर्म या कर्तव्यका भाव ही है। उनकी तो वह प्रेम-चेष्टा केवल स्वार्थके हेतुसे ही होती है, उनका और कोई प्रयोजन नहीं होता ॥ १७ ॥

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ।
धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

भजन्ति, अभजतः, ये, वै, करुणाः, पितरः, यथा,
धर्मः, निरपवादः, अत्र, सौहृदम्, च, सुमध्यमाः ॥ १८ ॥

सुमध्यमाः	=(और) हे सुन्दरियो!	**पितरः**	=(और) माता-पिता,
ये	=जो लोग	**अत्र**	=(उनके) इस (व्यवहार) में
अभजतः	=प्रेम न करनेवालोंसे	**निरपवादः**	=निर्दोष
वै	=भी	**धर्मः**	=धर्म
भजन्ति	=प्रेम करते हैं	**च**	=और
यथा	=जैसे	**सौहृदम्**	=प्रेम (भी होता है)
करुणाः	=(स्वभावसे) ही करुणहृदय सज्जन		

सुन्दरियो ! जो लोग प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करते हैं, जैसे स्वभावसे ही करुणहृदय पुरुष एवं माता-पिता प्रेम करते हैं, उनके इस बर्तावमें कोई दोष नहीं होता, और पूर्ण धर्म तथा सौहार्द ही भरा रहता है ॥ १८ ॥

भजतोऽपि न वै केचिद् भजन्त्यभजतः कुतः ।
आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥

भजतः, अपि, न, वै, केचित्, भजन्ति, अभजतः, कुतः,
आत्मारामाः, हि, आप्तकामाः, अकृतज्ञाः, गुरुद्रुहः ॥ १९ ॥

केचित्	=कुछ लोग	आप्तकामाः	=(दूसरे वे) जिनकी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं (जो कृतार्थ हो गये हैं)
अभजतः	=प्रेम न करनेवालोंसे	अकृतज्ञाः	=(तीसरे वे) जो कृतघ्न हैं—किये हुए प्रेम या उपकारका स्मरण नहीं करते
वै	=तो	हि	=और (चौथे वे)
कुतः	=दूर रहा	गुरुद्रुहः	=जो (हित करनेवाले) गुरुजनोंसे भी वैर रखते हैं
भजतः	=प्रेम करनेवालोंसे		
अपि	=भी		
न	=नहीं		
भजन्ति	=प्रेम करते (ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं—एक तो वे)		
आत्मारामाः	=जो आत्मस्वरूपमें ही नित्य रमण करते हैं,		

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, फिर प्रेम न करनेवालोंसे प्रेम करनेकी तो बात ही क्या है। ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं—एक तो वे, जो नित्य अपने आत्मस्वरूपमें ही रमण करते हैं; दूसरे वे, जिनकी सब कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं; तीसरे वे, जो कृतघ्न हैं, किये गये उपकार तथा प्रेमका स्मरण भी नहीं करते; और चौथे वे, जो अपना सहज हित करनेवाले गुरुजनोंसे भी द्रोह करते हैं ॥ १९ ॥

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्
भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।

यथाधनो लब्धधने विनष्टे
तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥

न, अहम्, तु, सख्यः, भजतः, अपि, जन्तून्, भजामि, अमीषाम्, अनुवृत्तिवृत्तये, यथा, अधनः, लब्धधने, विनष्टे, तच्चिन्तया, अन्यत्, निभृतः, न, वेद ॥ २० ॥

अहम्	=(यदि तुम मेरी बात जानना चाहती हो तो) मैं	यथा	=जैसे
तु	=तो	अधनः	=निर्धन (मनुष्य)
सख्यः	=हे सखियो !	लब्धधने	=पाये हुए धनके
भजतः	=प्रेम करनेवाले	विनष्टे	= खो जानेपर
जन्तून्	=जीवोंसे	तच्चिन्तया	=उसकी चिन्तासे
अपि	=भी	निभृतः	=व्याप्त (होकर)
अमीषाम्	=उनकी	अन्यत्	=दूसरी किसी वस्तुको
अनुवृत्ति-वृत्तये	=चित्तवृत्ति निरन्तर (मुझमें) लगाये रखनेके लिये	न	=नहीं
न	=नहीं		
भजामि	=प्रेम करता (उदासीन-सा हो जाता हूँ)	वेद	=याद रखता (वही दशा मेरी उदासीनताको देखकर मुझे न पाकर उन लोगोंकी होती है)

सखियो ! यदि तुम मेरी बात जानना चाहती हो तो मैं तो प्रेम करनेवाले प्राणियोंसे भी वैसा प्रेम नहीं करता; उनकी चित्तवृत्ति निरन्तर मुझमें लगी रहे, इसलिये कभी-कभी उनसे उदासीन-सा हो जाता हूँ । जैसे निर्धन मनुष्यको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर वह खो जाय तो

उसके हृदयमें खोये हुए धनकी ही चिन्ता छायी रहती है, वह दूसरी वस्तुका स्मरण ही नहीं करता, इसी प्रकार मैं भी मिल-मिलकर छिप जाया करता हूँ, जिससे मेरा चिन्तन नित्य-निरन्तर बना रहे ॥ २० ॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

एवम्, मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानाम्, हि, वः, मयि, अनुवृत्तये, अबलाः, मया, परोक्षम्, भजता, तिरोहितम्, मा, असूयितुम्, मा, अर्हथ, तत्, प्रियम्, प्रियाः ॥ २१ ॥

अबलाः	= हे अबलाओ ! (ललनाओ !)	परोक्षम्	= तुमलोगोंकी दृष्टि बचाकर
एवम्	= इस प्रकार	भजता	= तुम्हारे प्रेमका रस लेते हुए
मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानाम्	= जिन्होंने मेरे लिये लोकमर्यादा, वेद-मार्ग एवं आत्मीय जनोंका भी परित्याग कर दिया,	मया	= मैं
		तिरोहितम्	= छिप गया था;
		तत्	= इसलिये
		प्रियाः	= हे प्रियाओ !
वः	= (ऐसी) तुमलोगोंकी	प्रियम्	= अपने प्रेमास्पद
मयि	= मुझमें (अपने अंदर)	मा	= मुझमें
अनुवृत्तये	= चित्तवृत्ति लगाये रखनेके लिये	असूयितुम्	= दोष देखना
हि	= ही	मा अर्हथ	= तुम्हारे लिये उचित नहीं

गोपललनाओ ! तुमलोगोंने मेरे लिये सारी लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और आत्मीय स्वजनोंका भी परित्याग कर दिया । इस स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति मेरेद्वारा प्राप्त होनेवाले किसी सुखमें लगकर मुझे छोड़ न दे, केवल मुझमें ही लगी रहे, इसीलिये ही मैं तुमलोगोंसे दृष्टि बचाकर तुम्हारे प्रेमरसका पान करता हुआ ही यहाँ छिप रहा था । मेरी गोपियो ! तुम मेरी अत्यन्त प्रिया हो और मैं तुम्हारा परम प्रियतम हूँ, अतः तुमलोग मुझमें दोष मत देखो ॥ २१ ॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥

न, पारये, अहम्, निरवद्यसंयुजाम्, स्वसाधुकृत्यम्, विबुधायुषा, अपि, वः, याः, मा, अभजन्, दुर्जरगेहशृङ्खलाः, संवृश्च्य, तद्, वः, प्रतियातु, साधुना ॥ २२ ॥

याः = जिन्होंने

दुर्जरगेहशृङ्खलाः = कठिनतासे टूटनेवाली गृहस्थीकी बेड़ियोंको

संवृश्च्य = भली प्रकारसे काटकर

मा = मुझसे

अभजन् = प्रेम किया है

निरवद्यसंयुजाम् = (तथा) जिनका मेरे साथ मिलन सर्वथा निर्दोष है,

वः = (ऐसी) तुमलोगोंके

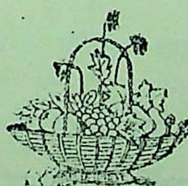
स्वसाधुकृत्यम् = मेरे प्रति किये गये प्रेम, सेवा और उपकारका

विबुधायुषा = देवताकी आयुमें

अपि	= भी
अहम्	= मैं
न	= नहीं
पारये	= बदला चुका सकता
तत्	= वह (तुम्हारा ऋण)
वः	= तुम्हारी
साधुना	= साधुता (सौजन्य, कृपा) से (ही)
प्रतियातु	= उतर सकता है (मैं उसे उतारनेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ पाता हूँ)

प्रियाओ ! प्रयत्न करनेवाले साधकोंसे भी जो घर-गृहस्थीकी बेड़ियाँ नहीं टूटतीं, तुमने उनको भलीभाँति तोड़कर मुझसे यथार्थ प्रेम किया है। मेरे साथ तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्दोष—निज सुखके इच्छालेशसे भी रहित परम पवित्र है। तुमलोगोंने केवल मुझको सुख देनेके लिये ही इतना त्याग किया है। मेरे प्रति किये जानेवाले तुम्हारे इस प्रेम, सेवा और उपकारका बदला मैं देवताओंकी लंबी आयुमें भी सेवा करके नहीं चुका सकता। तुम अपनी साधुता, सौजन्यसे ही चाहो तो मुझे उऋण कर सकती हो। मैं तो तुम्हारा ऋण चुकानेमें सर्वथा असमर्थ हूँ ॥ २२ ॥

॥ चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥



पाँचवाँ अध्याय

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

श्रीशुकः उवाच

इत्थम्, भगवतः, गोप्यः, श्रुत्वा, वाचः, सुपेशलाः,
जहुः, विरहजम्, तापम्, तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

इत्थम्	= इस प्रकार
गोप्यः	= गोपियोंने
भगवतः	= भगवान् (श्रीकृष्ण) की
सुपेशलाः	= सुमधुर
वाचः	= उक्तियोंको
श्रुत्वा	= सुनकर
तदङ्गोपचिताशिषः	= (और) उनके अङ्ग-सङ्गसे पूर्णकाम (होकर)
विरहजम्	= उनके विरहसे उत्पन्न
तापम्	= तापको
जहुः	= त्याग दिया (उससे छूट गयीं)

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियाँ प्रेमसमुद्र भगवान्‌की सुमधुर वाणी सुनकर और उन सौन्दर्य-माधुर्य-निधि प्रियतमके अङ्ग-सङ्गसे पूर्णकाम होकर उनके विरहजनित संतापसे मुक्त हो गयीं ॥ १ ॥

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

तत्र, आरभत, गोविन्दः, रासक्रीडाम्, अनुव्रतैः, स्त्रीरत्नैः, अन्वितः, प्रीतैः, अन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

तत्र	=(फिर) वहाँ	अन्योन्याबद्धबाहुभिः	=एक दूसरेकी बाँहमें बाँह डाले हुए
गोविन्दः	=श्रीकृष्णने	स्त्रीरत्नैः	=(उन) स्त्रीरत्नोंके
अनुव्रतैः	=(अपने सर्वथा) अनुगत	अन्वितः	=साथ मिलकर
प्रीतैः	=(परम) प्रसन्न (तथा)	रासक्रीडाम्	=रासलीला
		आरभत	=आरम्भ की

तदनन्तर यमुनातटपर भगवान् श्रीकृष्णकी रुचिके अनुसार चलनेवाली उनकी परम प्रेयसी गोपियाँ एक दूसरेकी बाँहमें बाँह डालकर खड़ी हो गयीं और भगवान् श्रीकृष्णने उन स्त्रीरत्नोंके साथ मिलकर परम रसमयी रासलीला आरम्भ की ॥ २ ॥

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥
यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशतसंकुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

रासोत्सवः, सम्प्रवृत्तः, गोपीमण्डलमण्डितः, योगेश्वरेण, कृष्णेन, तासाम्, मध्ये, द्वयोः, द्वयोः, प्रविष्टेन, गृहीतानाम्, कण्ठे, स्वनिकटम्, स्त्रियः ॥ ३ ॥
यम्, मन्येरन्, नभः, तावत्, विमानशतसंकुलम्, दिवौकसाम्, सदाराणाम्, औत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥

कण्ठे गृहीतानाम्	= जिनके गलेमें उन्होंने बाँह डाल रखी थी	यम्	= जिन (भगवान् श्रीकृष्ण) को
तासाम्	= उन (गोपियों) मेंसे	स्त्रियः	= (वे सभी) गोपियाँ
द्वयोः द्वयोः	= दो-दोके	स्वनिकटम्	= अपने पार्श्वमें स्थित
मध्ये	= बीचमें	मन्येरन्	= समझ रही थीं
प्रविष्टेन	= खड़े हुए	तावत्	= इतनेमें ही
योगेश्वरेण	= योगेश्वरेश्वर	नभः	= आकाश
कृष्णेन	= (भगवान्) श्रीकृष्णने	औत्सुक्यापहृतात्मनाम्	= जिनका मन उत्सुकताके कारण अपने वशमें नहीं रहा था
गोपीमण्डलमण्डितः	= गोपियोंके मण्डलसे सुशोभित	सदाराणाम्	= पत्नियोंके सहित
रासोत्सवः	= रास-नृत्यका समारोह	दिवौकसाम्	= (उन) देवताओंके
सम्प्रवृत्तः	= प्रारम्भ किया	विमानशतसंकुलम्	= सैकड़ों विमानोंसे भर गया

योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें अनेक रूपोंमें प्रकट होकर, उनके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये। अब सहस्रों गोपियोंके बीच-बीचमें शोभायमान श्रीभगवान्‌ने दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ किया। प्रत्येक गोपी यही समझ रही थी कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण तो मेरे ही पार्श्वमें स्थित हैं। भगवान्‌के द्वारा प्रारम्भ किये गये उस रसमय रासोत्सवको देखनेकी उत्सुकतासे जिनका मन अपने वशमें नहीं रह गया था, वे सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। सारा आकाश देवताओंके विमानोंसे भर गया॥ ३-४॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम्॥ ५॥

ततः, दुन्दुभयः, नेदुः, निपेतुः, पुष्पवृष्टयः, जगुः, गन्धर्वपतयः, सस्त्रीकाः, तद्यशः, अमलम् ॥ ५ ॥

ततः = उस समय
दुन्दुभयः = स्वर्गके नगारे
नेदुः = बजने लगे
पुष्पवृष्टयः = पुष्पोंकी बौछारें
निपेतुः = गिरने लगीं
गन्धर्व-पतयः = (और) गन्धर्वोंके नायक
सस्त्रीकाः = अपनी पत्नियोंके साथ
अमलम् = निर्मल
तद्यशः = उन (भगवान् श्रीकृष्ण) का यश
जगुः = गाने लगे

उस समय स्वर्गकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी और गन्धर्वोंके स्वामी अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण-का निर्मल यशोगान करने लगे ॥ ५ ॥

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥

वलयानाम्, नूपुराणाम्, किङ्किणीनाम्, च, योषिताम्, सप्रियाणाम्, अभूत्, शब्दः, तुमुलः, रासमण्डले ॥ ६ ॥

रासमण्डले = रासमण्डलमें (भी)
सप्रियाणाम् = (अपने) प्रियतम (श्रीकृष्ण) के साथ (नृत्य करती हुई)
योषिताम् = गोपियोंके
वलयानाम् = कङ्कणोंका
नूपुराणाम् = पायजेबोंका
च = और
किङ्किणी-नाम् = करधनियोंका
तुमुलः = मिश्रित
शब्दः = शब्द
अभूत् = हुआ

रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ नृत्य करने लगीं। उस समय वहाँ भी उन सहस्रों गोपियोंके हाथोंके कङ्कण, पैरोंकी पायजेब तथा कटिकी करधनियाँ बजने लगीं, जिनकी मिश्रित मधुर ध्वनि सर्वत्र छा गयी ॥ ६ ॥

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥

तत्र, अतिशुशुभे, ताभिः, भगवान्, देवकीसुतः,
मध्ये, मणीनाम्, हैमानाम्, महामरकतः, यथा ॥ ७ ॥

तत्र	= उस (रासमण्डल)में	**अतिशुशुभे**	= अत्यन्त सुशोभित हुए
ताभिः	= उन (गोपियों)के साथ	**यथा**	= जैसे
		हैमानाम्	= सोनेकी बनी हुई
भगवान्	= परम ऐश्वर्यशाली	**मणीनाम्**	= मणियोंके
देवकीसुतः	= देवकीनन्दन (श्रीकृष्ण)	**मध्ये**	= बीचमें
	(उसी प्रकार)	**महामरकतः**	= प्रभामयी मरकत मणि (सुशोभित हो)

उस रासमण्डलमें व्रजसुन्दरियोंके साथ षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे, जैसे स्वर्णमयी मणियोंके बीचमें प्रभामयी नीलमणि सुशोभित हो ॥ ७ ॥

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८ ॥

पादन्यासैः, भुजविधुतिभिः, सस्मितैः, भ्रूविलासैः, भज्यन्मध्यैः, चलकुचपटैः, कुण्डलैः, गण्डलोलैः, स्विद्यन्मुख्यः, कबररशना-ग्रन्थयः, कृष्णवध्वः, गायन्त्यः, तम्, तडितः, इव, ताः, मेघचक्रे, विरेजुः ॥ ८ ॥

स्विद्यन्मुख्यः	= जिनके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें झलक रही हैं	भुजविधुतिभिः	= बाहु-विक्षेपोंसे
कबररशना-ग्रन्थयः	= जिनकी वेणियाँ और कमरके बन्धन कसकर बाँधे हुए हैं	सस्मितैः	= मन्द मुसकान-से युक्त
		भ्रूविलासैः	= भौंहोंकी मटकसे
		भज्यन्मध्यैः	= लचकते हुए कटिप्रदेशोंसे
ताः	= वे	चलकुचपटैः	= कुचोंपरसे खिसकते हुए वस्त्रोंसे (तथा)
कृष्णवध्वः	= श्रीकृष्णाकी प्रियतमा (गोपिकाएँ)	गण्डलोलैः	= कपोलोंपर हिलते हुए
तम्	= उन (भगवान् श्रीकृष्ण) की	कुण्डलैः	= कुण्डलोंके कारण
गायन्त्यः	= (मधुर) लीला-ओंका गान करती हुई	मेघचक्रे	= मेघमण्डलमें (कौंधती हुई)
		तडितः इव	= बिजलियोंकी भाँति
पादन्यासैः	= (विचित्र) पादविन्यासोंसे	विरेजुः	= सुशोभित हुईं

श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी गोपसुन्दरियाँ अति मधुर स्वरसे प्रियतमकी मधुर लीलाओंका गान करती हुई नृत्य कर रही थीं। उस समय, वे मस्तक-की वेणीकी और कमरके लहँगेकी डोरीको कसकर बाँधे हुए भाँति-भाँतिसे

पैरोंको नचा रही थीं, चरणोंकी गतिके अनुसार भुजाओंसे कलापूर्ण भाव प्रकट कर रही थीं, मंद-मंद मुसकरा रही थीं और भौंहोंको मटका रही थीं। नाचनेमें कभी-कभी पतली कमर लचक जाती थी, उनके स्तनोंके वस्त्र उड़े जा रहे थे, कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर अपनी प्रभासे उनके कपोलोंको और भी चमका रहे थे। नाचनेके श्रमसे उनके मुखोंपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। उस समय वे व्रजसुन्दरियाँ ऐसी असीम शोभा पा रही थीं मानो नील बादलोंके बीच-बीचमें स्वर्णवर्णा बिजलियाँ चमक रही हों ॥ ८ ॥

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ।
कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥

उच्चैः, जगुः, नृत्यमानाः, रक्तकण्ठ्यः, रतिप्रियाः, कृष्णाभिमर्शमुदिताः, यद्गीतेन, इदम्, आवृतम् ॥ ९ ॥

रतिप्रियाः = क्रीडामें आसक्त	**उच्चैः** = उच्च स्वरसे
रक्तकण्ठ्यः = वे सुन्दर कण्ठवाली कामिनियाँ	**जगुः** = गान करने लगीं
कृष्णाभिमर्शमुदिताः = भगवान् श्रीकृष्णके संस्पर्शसे आनन्दित होकर	**यद्गीतेन** = जिनके (उस) गानसे
नृत्यमानाः = नाचती हुई	**इदम्** = यह (सम्पूर्ण जगत्)
	आवृतम् = व्याप्त हो गया (गूँज उठा)

श्रीकृष्णके साथ क्रीड़ामें आसक्त वे सुन्दर कण्ठवाली व्रजरमणियाँ भगवान् श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्तकर आनन्दमग्न हो रही थीं। वे नाचती हुई ऊँचे स्वरसे परम मधुर गान कर रही थीं। उनकी संगीत-ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा था ॥ ९ ॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः ।

उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥१०॥

काचित्, समम्, मुकुन्देन, स्वरजातीः, अमिश्रिताः, उन्निन्ये, पूजिता, तेन, प्रीयता, साधु, साधु, इति, तत्, एव, ध्रुवम्, उन्निन्ये, तस्यै, मानम्, च, बहु, अदात् ॥ १० ॥

काचित्	= कोई (गोपी)	पूजिता	= उस गोपीका सम्मान (अभिनन्दन) किया
मुकुन्देन समम्	= भगवान् श्रीकृष्ण-के साथ	तत् एव	= उसी (राग) को (एक दूसरी सखीने)
अमिश्रिताः	= उनके स्वरोंसे विलक्षण	ध्रुवम्	= ध्रुपदतालमें
स्वरजातीः	= स्वरोंको	उन्निन्ये	= उठाया
उन्निन्ये	= उठाकर गाने लगी	च	= और
प्रीयता	= (जिसपर) प्रसन्न होकर	तस्यै	= उसे (भगवान्ने)
तेन	= उन्होंने	बहु	= बहुत
साधु	= बहुत अच्छा	मानम्	= आदर
साधु	= बहुत अच्छा	अदात्	= दिया
इति	= यों (कहकर)		

कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्णके स्वरकी अपेक्षा भी विलक्षण ऊँचे स्वरसे गान करने लगी । उसके विलक्षण मधुर गानको सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा', 'बहुत अच्छा' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे । उसी रागको एक दूसरी गोपीने ध्रुपद तालमें उठाकर गाया और भगवान्ने उसको भी बड़ा आदर दिया ॥ १० ॥

काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ।
जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥

काचित्, रासपरिश्रान्ता, पार्श्वस्थस्य, गदाभृतः;
जग्राह, बाहुना, स्कन्धम्, श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥

काचित्	= कोई (तीसरी सखी)		(अतः उसने)
रास-परिश्रान्ता	= रासमें नृत्य करते-करते थक गयी	बाहुना	= (अपनी) भुजासे
		पार्श्वस्थस्य	= अपनी बगलमें खड़े हुए
श्लथद्वलय-मल्लिका	= उसके हाथोंसे कंगन तथा वेणीमें बँधे हुए बेलेके फूल खिसकने लगे	गदाभृतः	= श्यामसुन्दरके
		स्कन्धम्	= कंधेको
		जग्राह	= (सहारेके लिये पकड़ लिया)

कोई एक सखी रासमें प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके साथ नृत्य करते-करते थक गयी। उसके हाथोंके कंगन तथा वेणियोंमें बँधे हुए बेलेके पुष्प खिसकने लगे। तब वह अपने पार्श्वमें ही स्थित श्यामसुन्दरके कंधेको पकड़कर उसके सहारे खड़ी हो गयी ॥ ११ ॥

तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम्।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥

तत्र, एका, अंसगतम्, बाहुम्, कृष्णस्य, उत्पलसौरभम्,
चन्दनालिप्तम्, आघ्राय, हृष्टरोमा, चुचुम्ब, ह ॥ १२ ॥

तत्र	= वहाँ	चन्दना-लिप्तम्	= परमसुगन्धित चन्दनसे चर्चित
एका	= एक (गोपी) ने		
अंसगतम्	= (अपने) कंधेपर रखी हुई	बाहुम्	= भुजाको
		आघ्राय	= सूँघकर
कृष्णस्य	= भगवान् श्रीकृष्णकी	हृष्टरोमा	= पुलकित (हो)
उत्पल-सौरभम्	= कमलके-से गन्ध-वाली (तथा)	चुचुम्ब ह	= चूम लिया

वहाँ एक गोपीने श्रीकृष्णका कोमल कर-कमल अपने कंधेपर रख लिया। भगवान्‌के उस हाथसे स्वाभाविक ही कमलकी-सी दिव्य सुगन्ध आ रही थी और उसपर अत्यन्त सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था। भगवान्‌के भुजस्पर्श और उनके दिव्य अङ्ग-गन्धसे उस गोपीके आनन्दसे रोमाञ्च हो आया और उसने झट् भगवान्‌के हाथको चूम लिया ॥ १२ ॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे संदधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥

कस्याश्चित्, नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्, गण्डम्, गण्डे, संदधत्याः, अदात्, ताम्बूलचर्वितम् ॥ १३ ॥

नाट्यविक्षिप्त-कुण्डलत्विष-मण्डितम्	= नाचनेके कारण हिलते हुए कुण्डलकी आभा-से सुशोभित	**संदधत्याः**	= सटा देनेवाली
		कस्याश्चित्	= किसी (गोपी) को (उन्होंने)
गण्डम्	= (अपने) कपोलको	**ताम्बूल-चर्वितम्**	= अपना चबाया हुआ पान
गण्डे	= (भगवान् श्री-कृष्णके) कपोलसे	**अदात्**	= दे दिया

एक दूसरी गोपी रासमें नाच रही थी, इससे उसके कानोंके कुण्डल हिल रहे थे और उन कुण्डलोंकी झलक उसके कपोलोंपर चमक रही थी। उस गोपीने अपने कपोलको भगवान्‌के कपोलसे सटा दिया। तब भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे अपना चबाया हुआ पान उसके मुखमें दे दिया ॥ १३ ॥

नृत्यन्ती गायती काचित् कूजन्नूपुरमेखला ।
पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताधात् स्तनयोः शिवम् १४

नृत्यन्ती, गायती, काचित्, कूजन्नूपुरमेखला, पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जम्, श्रान्ता, अधात्, स्तनयोः, शिवम् ॥ १४ ॥

काचित् = कोई (गोपी)

कूजन्नूपुर-मेखला = पाजेब एवं करधनीकी झनकार करती हुई

नृत्यन्ती = नाच रही (और)

गायती = गा रही थी

श्रान्ता = (नाचते-नाचते जब वह) थक गयी (तब उसने)

शिवम् पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जम् = बगलमें खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णके शान्तिदायक कर-कमलको

स्तनयोः = (अपने) स्तनोंपर

अधात् = रख लिया

कोई एक गोपी अपने पैरोंकी पाजेब तथा करधनीके घुँघुरुओंको मधुरस्वरसे झनकारती हुई नाच-गा रही थी । वह जब थक गयी और उसका हृदय धड़कने लगा, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े हुए श्यामसुन्दरके शीतल सुकोमल कर-कमलको अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया ॥ १४ ॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥१५॥

गोप्यः, लब्ध्वा, अच्युतम्, कान्तम्, श्रियः, एकान्तवल्लभम्, गृहीतकण्ठ्यः, तद्दोर्भ्याम्, गायन्त्यः, तम्, विजह्रिरे ॥ १५ ॥

श्रियः = (साक्षात्) श्रीलक्ष्मीजीके

एकान्तवल्लभम् = एकमात्र प्रियतम

अच्युतम् = भगवान् अपने तत्त्व-स्वरूपसे कभी विचलित न होनेवाले

कान्तम् = कान्तरूपमें

लब्ध्वा = पाकर

गोप्यः = गोपियाँ

तद्दोर्भ्याम् गृहीतकण्ठ्यः = जिनके गलेमें उन्होंने बाँह डाल रखी थी

तम् गायन्त्यः = उन (श्रीकृष्ण) की प्रेमलीलाका गान करती हुई (उनके साथ)

विजह्रिरे = विहार करने लगीं

साक्षात् श्रीलक्ष्मीजीके एकमात्र परम प्रियतम तथा सदा अपने तत्त्व-स्वरूपमें ही प्रतिष्ठित भगवान् श्रीकृष्णको अपने कान्त—हृदयेश्वरके रूपमें प्राप्त कर गोपसुन्दरियाँ उनके गलोंमें अपनी भुजाएँ डालकर उन प्रियतमकी प्रेमलीलाका गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं ॥ १५ ॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्म-
वक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेश-
स्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियः, वलयनूपुरघोषवाद्यैः, गोप्यः, समम्, भगवता, ननृतुः, स्वकेशस्रस्तस्रजः, भ्रमरगायक-रासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥

कर्णोत्पला-लकविटङ्क-कपोलघर्म-वक्त्रश्रियः = कानोंमें खोंसे हुए कमलपुष्पों, अलकावलीसे अलंकृत कपोलों तथा पसीनेकी बूँदोंसे जिनके मुखारविन्दकी अपूर्व शोभा हो रही थी,

गोप्यः = (वे) गोपियाँ

भ्रमरगायक-रासगोष्ठ्याम् = भ्रमर ही जिसमें गायक बने हुए थे, उस रास-मण्डलमें

वलयनूपुर घोषवाद्यैः = कङ्कण एवं नूपुरोंके शब्दरूप बाजोंके साहचर्यमें

भगवता समम् = भगवान् श्रीकृष्ण-के साथ

ननृतुः = नाचने लगीं

स्वकेश-स्रस्तस्रजः = (उस समय) उनके केशपाशोंसे फूलों-की मालाएँ खिसकती जाती थीं

उन गोपसुन्दरियोंके कानोंमें कमलके पुष्प सुशोभित थे। घुँघुराली लटें गालोंको विभूषित कर रही थीं। पसीनेकी बूँदोंसे उनके मुख-सरोजोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं। उस नृत्यके साथ उनके हाथोंके कंगन और पैरोंकी पाजेबोंके बाजे बज रहे थे और भ्रमरोंके दल सुर-में-सुर मिलाकर मधुर गान कर रहे थे। उस समय उनकी वेणियोंमें गुँथे हुए पुष्प खिसक-खिसककर गिरे जा रहे थे ॥ १६ ॥

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

एवम्, परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः, रेमे, रमेशः, व्रजसुन्दरीभिः, यथा, अर्भकः, स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

यथा	= जैसे	**परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः**	= आलिङ्गन, हाथोंसे अङ्गस्पर्श, प्रेमयुक्त कटाक्ष एवं उन्मुक्त विलासपूर्ण हासके द्वारा
अर्भकः	= छोटा शिशु		
स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः	= अपनी परछाईंके साथ खेलता है		
एवम्	= उसी प्रकार	**व्रजसुन्दरीभिः**	= व्रजसुन्दरियोंके साथ
रमेशः	= लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णने	**रेमे**	= रमण किया

जैसे छोटा-सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमानाथ भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन गोपियोंका आलिङ्गन करते, कभी हाथोंसे उनका अङ्गस्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर निहारते और कभी विलासपूर्ण रीतिसे खिलखिलाकर हँस पड़ते। इस प्रकार उन्होंने उन निजस्वरूपभूता व्रजसुन्दरियोंके साथ रमण किया। (वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्णकी यह स्वरूपभूता लीला थी। गोपियाँ तत्त्वतः

श्रीकृष्णसे अभिन्न थीं; पर जैसे बालक अपना मुख स्वयं न देख पानेके कारण उसके साथ खेल नहीं सकता, परंतु दर्पणादिमें अपनी परछाईं देखकर विचित्र भाव-भङ्गिमाओंसे उसके साथ खेलकर आनन्दका अनुभव करता है, वैसे ही श्रीभगवान् भी अपने साथ आप क्रीड़ा नहीं कर सकते। इसीलिये वे अपनी ही परछाईंरूपा ह्लादिनीशक्तिकी विकसित मूर्त्तियों-श्रीव्रजसुन्दरियोंके साथ विविध विलास करके निर्मल दिव्य रसानन्दका अनुभव करते हैं। अपने अलौकिक अनुपमेय प्रतिक्षणवर्धमान सौन्दर्य-माधुर्य-सुधारसका अनुभव करनेके लिये ही वे निजस्वरूपा व्रजसुन्दरियोंके साथ लीला करके उसका रसास्वादन करते हैं।)॥ १७ ॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः
केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो
विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥१८॥

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः, केशान्, दुकूलम्, कुचपट्टिकाम्, वा, न, अञ्जः, प्रतिव्योढुम्, अलम्, व्रजस्त्रियः, विस्रस्तमालाभरणाः, कुरूद्वह ॥ १८ ॥

कुरूद्वह	= हे कुरुनन्दन !	**विस्रस्त-माला-भरणाः**	= जिनके गलेके पुष्प-हार एवं आभूषण च्युत हो गये थे,
तदङ्गसङ्ग-प्रमुदा-कुलेन्द्रियाः	= उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के अङ्ग-सङ्गसे होनेवाले परमानन्दके कारण जिनकी इन्द्रियाँ विह्वल हो गयी थीं, (अतएव)	**व्रजस्त्रियः**	= (वे) व्रजबालाएँ
		केशान्	= अपने केशपाशको
		दुकूलम्	= ओढ़नेके वस्त्रको
		वा	= अथवा

कुच - पट्टिकाम्	= चोलीको (भी)	प्रतिव्योढुम्	= सँभालनेमें
		अलम्	= समर्थ
अञ्जः	= जल्दी	न	= नहीं हुई

परीक्षित् ! प्रियतम भगवान्‌के अङ्गोंका संस्पर्श पाकर गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेमानन्दसे विह्वल हो गयीं। उनके कण्ठोंमें पड़े हुए पुष्पहार टूट गये। उनके आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये। सजाये हुए केश बिखर गये। वे अपनी ओढ़नी तथा चोलीको भी जल्दीसे सँभालनेमें असमर्थ हो गयीं ॥ १८ ॥

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ।
कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥

कृष्णविक्रीडितम्, वीक्ष्य, मुमुहुः, खेचरस्त्रियः, कामार्दिताः, शशाङ्कः, च, सगणः, विस्मितः, अभवत् ॥ १९ ॥

कृष्ण-विक्रीडितम्	= भगवान् श्रीकृष्ण-की (उस) रास-क्रीडाको	मुमुहुः	= मोहित हो गयीं
		च	= और
		शशाङ्कः	= चन्द्रमा
वीक्ष्य	= देखकर	सगणः	= अपने गणों (नक्षत्रों) सहित
खेचरस्त्रियः	= आकाशमें स्थित देवाङ्गनाएँ	विस्मितः	= आश्चर्यचकित
कामार्दिताः	= कामातुर (होकर)	अभवत्	= हो गया

भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रेममयी रासक्रीड़ाको देखकर आकाशमें विमानोंमें बैठी देवाङ्गनाएँ भी मिलनकी इच्छासे मोहित हो गयीं और चन्द्रमा अपने गणों—नक्षत्रों तथा तारोंके साथ आश्चर्यचकित हो गया॥ १९॥

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ।
रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥

कृत्वा, तावन्तम्, आत्मानम्, यावतीः, गोपयोषितः,
रेमे, सः, भगवान्, ताभिः, आत्मारामः, अपि, लीलया ॥२०॥

भगवान्	= भगवान् (श्रीकृष्ण)	गोपयोषितः	= गोपरमणियाँ थीं,
आत्मारामः	= आत्माराम (अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले) हैं,	आत्मानम्	= अपनेको
		तावन्तम्	= उतने ही रूपोंमें
		कृत्वा	= प्रकट करके
अपि	= फिर भी	लीलया	= लीलासे
सः	= उन्होंने	ताभिः	= उनके साथ
यावतीः	= जितनी	रेमे	= रमण किया

भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, नित्य स्वभावसे आत्मस्वरूपमें ही रमण करते हैं। फिर भी उन्होंने, जितनी गोपरमणियाँ थीं, उतने ही रूपोंमें अपनेको प्रकट करके अपनी लीलासे ही—किसी कामना-वासनासे नहीं—उनके साथ रमण किया ॥ २० ॥

तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः ।
प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शंतमेनाङ्ग पाणिना ॥२१॥

तासाम्, अतिविहारेण, श्रान्तानाम्, वदनानि, सः,
प्रामृजत्, करुणः, प्रेम्णा, शंतमेन, अङ्ग, पाणिना ॥२१॥

अङ्ग	= हे तात ! (परीक्षित्)	करुणः	= करुणामय (भक्तवत्सल)
अतिविहारेण	= (तब) अत्यधिक विहारके कारण	सः	= उन (भगवान् श्रीकृष्ण) ने
		प्रेम्णा	= प्रेमपूर्वक (अपने)
श्रान्तानाम्	= थकी हुई	शंतमेन	= परम शान्तिदायक
तासाम्	= उन (गोपियों) के	पाणिना	= कर-कमलसे
वदनानि	= मुखोंको	प्रामृजत्	= भलीभाँति पोंछ दिया

प्रिय परीक्षित् ! यों बहुत देरतक नृत्य, गान, विहार आदि करनेके कारण अत्यधिक श्रमसे जब सारी गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने परम शान्तिदायक कोमल कर-कमलोंके द्वारा बड़े ही प्रेमसे उनके मुख-कमलोंको पोंछ दिया ॥ २१ ॥

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्-
गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि
पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥

गोप्यः, स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया, सुधितहासनिरीक्षणेन, मानम्, दधत्यः, ऋषभस्य, जगुः, कृतानि, पुण्यानि, तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥

तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः	= उन (भगवान् श्रीकृष्ण) के नखस्पर्शसे प्रमुदित हुई	**सुधितहासनिरीक्षणेन**	= सुधा-मधुर मुसकानसे युक्त कटाक्षोंसे
गोप्यः	= गोपियाँ	**मानम्**	= सम्मान
स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया	= झिलमिलाते हुए सुवर्णमय कुण्डलोंकी आभासे मण्डित और घुँघराली अलकोंसे सुशोभित कपोलोंकी सुन्दरतासे (तथा)	**दधत्यः**	= करती हुई
		ऋषभस्य	= (उन) पुरुषश्रेष्ठके
		पुण्यानि	= पावन
		कृतानि	= चरित्रोंको
		जगुः	= गाने लगीं

भगवान् श्यामसुन्दरके कर-कमलों और नखोंके स्पर्शसे गोपियाँ प्रमुदित हो गयीं। उन्होंने अपने कपोलोंकी सुन्दरतासे, जिनपर झिलमिलाते हुए सुवर्णमय कुण्डलोंकी आभा छिटक रही थी तथा घुँघराले केशोंकी लटें लहरा रही थीं, एवं अपनी सुधामयी मधुर मुसकानसे युक्त प्रेममयी चितवनसे उन पुरुषोत्तम भगवान्‌का सम्मान किया और फिर वे उनकी परमपवित्र प्रेमसुधामयी लीलाओंका गान करने लगीं ॥ २२ ॥

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-

घृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः।

गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः

श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥

ताभिः, युतः, श्रमम्, अपोहितुम्, अङ्गसङ्गघृष्टस्रजः, सः, कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः, गन्धर्वपालिभिः, अनुद्रुतः, आविशत्, वाः, श्रान्तः, गजीभिः, इभराट्, इव, भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥

श्रान्तः = (इसके बाद) थके हुए

सः = वे (श्रीकृष्ण)

भिन्नसेतुः = लोक और वेदकी मर्यादाको तोड़कर

श्रमम् = अपनी थकानको

अपोहितुम् = दूर करनेके लिये

ताभिः = उन (गोपियों) के

युतः = साथ

वाः = (श्रीयमुनाजीके) जलमें

आविशत् = घुस गये

इभराट् इव = ठीक जिस प्रकार गजराज

गजीभिः = हथिनियोंके साथ (बाँधको तोड़कर जलमें घुस जाय)

कुचकुङ्कुम-रञ्जितायाः	=	उस समय उन व्रजबालाओंके कुचोंपर लेप किये हुए केसरसे रँगी हुई (तथा)	गन्धर्व-पालिभिः	=	एवं गन्धर्वपतियोंके समान गान करते हुए भ्रमर
अङ्गसङ्ग-घृष्टस्रजः	=	उनके अङ्गोंकी रगड़से मर्दित वनमालासे आकृष्ट	अनुद्रुतः	=	उनका पीछा कर रहे थे ।

तदनन्तर जैसे विलास-क्रियासे थका हुआ गजराज बाँधको तोड़ता हुआ हथिनियोंके साथ जलमें प्रवेश करके विविध प्रकारसे क्रीड़ा करता है, वैसे ही थके हुए भगवान् श्रीकृष्ण लोक और वेदकी मर्यादाका भङ्ग करके अपनी थकानको दूर करनेके लिये उन गोप-सुन्दरियोंको लेकर श्रीयमुनाजीके जलमें घुस गये। उस समय भगवान्के गलेकी उस वनमालासे, जो गोप-सुन्दरियोंके अङ्गोंकी रगड़से कुछ मसली गयी थी और जो उनके वक्षःस्थलके केसरसे केसरी रंगकी हो रही थी, खिंचकर भ्रमरोंके दल-के-दल उनके पीछे-पीछे मधुर गुंजार करते हुए उड़े आ रहे थे, मानो गन्धर्वगण उनकी लीलाओंका सुमधुर गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों ॥ २३ ॥

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः
प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो
रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥२४॥

सः, अम्भसि, अलम्, युवतिभिः, परिषिच्यमानः, प्रेम्णा, ईक्षितः, प्रहसतीभिः, इतः, ततः, अङ्ग, वैमानिकैः, कुसुमवर्षिभिः, ईड्यमानः, रेमे, स्वयम्, स्वरतिः, अत्र, गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥

अङ्ग = हे तात (परीक्षित्)	वैमानिकैः = (तथा) विमानोंपर बैठे हुए देवता
अम्भसि = (श्रीयमुनाजीके) जलमें	कुसुम-वर्षिभिः = फूल बरसाते हुए
युवतिभिः = व्रजयुवतियाँ	
प्रेम्णा = प्रेम (भरी चितवन) से	ईड्यमानः = उनकी स्तुति करने लगे (इस प्रकार)
ईक्षितः = उनकी ओर देखती हुई	स्वयम् = साक्षात्
प्रहसतीभिः = खिलखिलाकर हँसती हुई	स्वरतिः = आत्मामें रमण करनेवाले (भगवान्)
इतः ततः = सब ओरसे	
सः = उन (भगवान् श्रीकृष्ण) पर	अत्र = वहाँ
अलम् = खूब	गजेन्द्रलीलः = गजराजकी-सी लीला करते हुए
परि-षिच्यमानः = जल उलीचने लगीं	रेमे = (जल-) विहार करने लगे

परीक्षित् ! यमुनाजीके जलमें वे व्रजतरुणियाँ प्रेममयी चितवनसे श्रीकृष्णकी ओर देखती हुई तथा खिलखिलाकर हँसती हुई उनपर चारों ओरसे खूब जल उलीचने लगीं। इस दृश्यको देखकर विमानोंपर बैठे हुए देवता फूल बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार अपने-आपमें ही नित्य रमण करनेवाले भगवान् स्वयं गजराजकी भाँति यमुनाजलमें गोपाङ्गनाओंके साथ जल-विहारकी लीला करने लगे ॥ २४ ॥

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल-

प्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।

चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो

यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः ॥२५॥

ततः, च, कृष्णोपवने, जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे, चचार, भृङ्गप्रमदागणावृतः, यथा, मदच्युत्, द्विरदः, करेणुभिः ॥

च	=और	चचार	=(इस प्रकार) विचरने लगे
ततः	=फिर		
भृङ्गप्रमदा-गणावृतः	=भौंरों और युवतियों-के समूहसे घिरे हुए (भगवान्)	यथा	=जैसे
कृष्णोपवने	=यमुनातटके उस उपवनमें	मदच्युत्	=मद चुवाता हुआ
जलस्थल-प्रसूनगन्धा-निलजुष्ट-दिक्तटे	=जहाँ सब ओर जल और भूमिपर खिले हुए पुष्पोंकी गन्धसे सुवासित वायु बह रही थी,	द्विरदः	=गजराज
		करेणुभिः	=हथिनियोंके साथ (घूम रहा हो)

इसके पश्चात् यमुनाजीसे निकलकर भ्रमरों तथा व्रजयुवतियोंसे घिरे हुए भगवान् उस रमणीय उपवनमें गये, जहाँ सब ओर जल और स्थलमें सुन्दर सुगन्धयुक्त पुष्प खिले हुए थे और उनकी सुगन्धका प्रसार करती हुई मन्द मनोहर वायु चल रही थी। उस उपवनमें भगवान् उसी प्रकार विचरने लगे, जैसे मद चुवाता हुआ गजराज हथिनियोंके साथ घूम रहा हो।२।५॥

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः

स सत्यकामोऽनुरताबलागणः।

सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः
सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥

एवम्, शशाङ्कांशुविराजिताः, निशाः, सः, सत्यकामः, अनुरताबलागणः, सिषेवे, आत्मनि, अवरुद्धसौरतः, सर्वाः, शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥

शशाङ्कांशुविराजिताः	= चन्द्रमाकी किरणोंसे सुशोभित
शरत्काव्यकथारसाश्रयाः	= काव्योंमें वर्णित शरत्कालोचित सम्पूर्ण रस-सामग्रियोंसे युक्त
सर्वाः	= (उन) सब
निशाः	= रात्रियोंमें
सत्यकामः	= सत्यसंकल्प (एवं)
अवरुद्धसौरतः	= अस्खलितवीर्य
सः	= उन (भगवान्) ने
आत्मनि अनुरताबलागणः	= अपने प्रति अनुरक्त उन गोपबालाओंके साथ
एवम्	= इस (पूर्वोक्त) प्रकार
सिषेवे	= विहार किया

शरद्की वह रात्रि अनेक रात्रियोंसे समन्वित होकर बड़ी ही शोभा पा रही थी। चन्द्रमाकी किरण-ज्योत्स्ना सब ओर छिटक रही थी। काव्योंमें शरत्कालकी जिन रस-सामग्रियोंका विवेचन किया गया है, वे सम्पूर्ण उसमें विद्यमान थीं। उस रात्रिमें सत्यसंकल्प भगवान् श्यामसुन्दरने अपनी परमप्रेयसी निजस्वरूपा चिन्मयी गोपरमणियोंके साथ चिन्मय लीला-विहार किया। भगवान्की सत्तासे ही कामदेवमें सत्ता आती है, इसलिये कामदेवका उनपर कोई भी वश नहीं चल सकता। अतएव वह यहाँ भी सर्वदा पराजित रहा। भगवान् सर्वथा अस्खलितवीर्य बने रहे ॥ २६ ॥

राजोवाच

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥२९॥

राजा उवाच

संस्थापनाय, धर्मस्य, प्रशमाय, इतरस्य, च, अवतीर्णः, हि, भगवान्, अंशेन, जगदीश्वरः, सः, कथम्, धर्मसेतूनाम्, वक्ता, कर्ता, अभिरक्षिता, प्रतीपम्, आचरत्, ब्रह्मन्, परदाराभिमर्शनम्, आप्तकामः, यदुपतिः, कृतवान्, वै, जुगुप्सितम्, किमभिप्रायः, एतम्, नः, संशयम्, छिन्धि, सुव्रत ॥२७-२९॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—

जगदीश्वरः = जगत्‌के स्वामी
भगवान् = भगवान् श्रीकृष्णने
धर्मस्य = धर्मकी
संस्थापनाय = सुदृढ स्थापनाके लिये
च = तथा
इतरस्य = अधर्मके
प्रशमाय = विनाशके लिये
हि = ही
अंशेन = अपने अंश (बलरामजी) के साथ
अवतीर्णः = अवतार लिया था
ब्रह्मन् = हे विप्रवर !
धर्मसेतूनाम् = धर्मकी मर्यादाओंके
वक्ता = उपदेशक
कर्ता = रचनेवाले (तथा)
अभिरक्षिता = पालक (होकर) भी

सः	= उन (भगवान् श्रीकृष्ण) ने	वै	= ऐसा
परदाराभिमर्शनम्	= परस्त्रियोंके अङ्गस्पर्श(-जैसा)	जुगुप्सितम्	= गर्हित (कर्म)
प्रतीपम्	= धर्मविरुद्ध आचरण	किमभिप्रायः	= किस अभिप्रायसे
कथम्	= कैसे, क्योंकर	कृतवान्	= किया
आचरत्	= किया	सुव्रत	= हे उत्तम निष्ठावाले मुनिवर !
आप्तकामः	= पूर्णकाम	नः	= हमारे
यदुपतिः	= यादवपति भगवान् श्रीकृष्णने	एतम्	= इस
		संशयम्	= संदेहको
		छिन्धि	= दूर कीजिये

इसी बीचमें राजा परीक्षित् भगवान्‌की चिन्मयी लीलाका रहस्य पूरी तरहसे न समझनेके कारण लौकिकभावसे शङ्का करते हुए श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न कर बैठे। उन्होंने कहा—

भगवन् ! भगवान् श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं, उन्होंने अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ धर्मकी स्थापना और अधर्मके विनाशके लिये ही परिपूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था। ब्रह्मन् ! वे स्वयं धर्म-मर्यादाओंकी रचना करनेवाले, उनकी रक्षा करनेवाले तथा उपदेशक थे। फिर, उन भगवान्‌ने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियोंका अङ्गस्पर्श कैसे और क्यों किया ? भगवान् श्रीकृष्ण तो नित्य पूर्णकाम हैं, उनके मनमें कभी कोई कामना जागती ही नहीं; फिर यादवेन्द्र भगवान्‌ने किस अभिप्रायसे ऐसा निन्दनीय कर्म किया ? उत्तम निष्ठावाले श्रीशुकदेवजी ! आप कृपापूर्वक मेरे इस संदेहको दूर कीजिये ॥ २७–२९ ॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥ ३० ॥

श्रीशुकः उवाच

धर्मव्यतिक्रमः, दृष्टः, ईश्वराणाम्, च, साहसम्,
तेजीयसाम्, न, दोषाय, वह्नेः, सर्वभुजः, यथा ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजीने उत्तर दिया—

ईश्वराणाम् = ईश्वरकोटिके समर्थ देवताओं-द्वारा
धर्मव्यतिक्रमः = धर्मका उल्लङ्घन
च = तथा
साहसम् = साहसके कार्य (होते)
दृष्टः = देखे गये हैं
तेजीयसाम् = परंतु तेजस्वी देवोंकी (ऐसी चेष्टा)
दोषाय = दोषकी बात
न = नहीं (मानी जाती)
यथा = जैसे
सर्वभुजः = सब कुछ भक्षण करनेवाले
वह्नेः = अग्निका (यह कार्य दोषयुक्त नहीं होता)

परीक्षित्‌के इस संदेहयुक्त प्रश्नसे विरक्तशिरोमणि शुकदेवजीके द्वारा प्रवाहित लीलारसका प्रवाह रुक गया और वे परीक्षित्‌का संदेह दूर करनेके लिये लौकिक युक्तिपूर्ण वचन बोले—

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! कर्मकी अधीनतासे मुक्त ईश्वर-कोटिके समर्थ महान् तेजस्वी देवताओंद्वारा कभी-कभी धर्मका उल्लङ्घन तथा ऐसे परम साहसके कार्य होते देखे जाते हैं। परंतु उन कार्योंसे उन तेजस्वी देवताओंका कोई दोष नहीं माना जाता। जैसे अग्नि शवदेहादि-पर्यन्त सब कुछ खा जाता है, परंतु उसके उस कार्यको कोई भी दोषयुक्त नहीं मानता ॥ ३० ॥

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्॥३१॥

न, एतत्, समाचरेत्, जातु, मनसा, अपि, हि, अनीश्वरः,
विनश्यति, आचरन्, मौढ्यात्, यथा, अरुद्रः, अब्धिजम्, विषम्॥

अनीश्वरः = (किंतु) जो समर्थ नहीं है (जीवभाव- में स्थित है) वह	विनश्यति = (वैसे ही) नष्ट हो जायगा
मनसा = मनसे	यथा = जैसे
अपि = भी (शरीरसे तो बात ही क्या)	अरुद्रः = जो शिवजीके समान समर्थ नहीं है, वह (उनकी देखा-देखी)
जातु = कदापि	अब्धिजम् = समुद्रसे उत्पन्न हुए
एतत् = ऐसी (धर्मविरुद्ध) चेष्टा	विषम् = विषको (पीने जाकर नष्ट हो जायगा)
न = नहीं	
समाचरेत् = करे;	
हि = क्योंकि	
मौढ्यात् = मूर्खतावश	
आचरन् = इस प्रकारका आचरण करनेवाला	

परंतु जो अनीश्वर हैं, समर्थ नहीं हैं, अजितेन्द्रिय तथा देहाभिमानी हैं, उन्हें, शरीरसे तो दूर रहा, कभी मनसे भी ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये । यदि कोई मूर्खतावश ईश्वरकी इस लीलाका अनुकरण करके इस प्रकारका आचरण कर बैठेगा तो वह नष्ट—पतित हो जायगा । भगवान्

शिवजीने समुद्रसे उत्पन्न हलाहल विष पी लिया था; पर उनकी देखा-देखी दूसरा कोई पियेगा तो वह निश्चय ही जलकर भस्म हो जायगा ॥३१॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥

ईश्वराणाम्, वचः, सत्यम्, तथा, एव, आचरितम्, क्वचित्, तेषाम्, यत्, स्ववचोयुक्तम्, बुद्धिमान्, तत्, समाचरेत् ॥३२॥

ईश्वराणाम् = समर्थ देवताओंका
वचः = वचन (आदेश)
सत्यम् = यथार्थ (पालनीय) होता है
तथा एव = उसी प्रकार
क्वचित् = कहीं-कहीं
आचरितम् = आचरण (भी आदर्श) होता है
तेषाम् = उनका
यत् = जो (आचरण)
स्ववचोयुक्तम् = उनके अपने उपदेशके अनुकूल हो
तत् = उसीका
बुद्धिमान् = बुद्धिमान् पुरुषको
समाचरेत् = अनुकरण करना चाहिये

इसलिये श्रीशंकरके सदृश समर्थ देवताओंके वचनोंका ही अधिकारानुसार यथार्थरूपसे पालन करना चाहिये, उनके स्वच्छन्द आचरणोंका नहीं। कहीं-कहीं उनके आचरणोंका भी अनुकरण किया जा सकता है, परंतु बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनके उसी आचरणका अनुकरण करे, जो उनके उपदेशके सर्वथा अनुकूल हो ॥ ३२ ॥

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते ।
विपर्ययेण वानर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥३३॥

कुशलाचरितेन, एषाम्, इह, स्वार्थः, न, विद्यते,
विपर्ययेण, वा, अनर्थः, निरहंकारिणाम्, प्रभो ॥ ३३ ॥

प्रभो	= हे राजन् !	विद्यते	= है
इह	= इस संसारमें	वा	= अथवा
निरहंकारिणाम्	= अहंकारशून्य	विपर्ययेण	= विपरीत (लोक-दृष्टिमें अशुभ) आचरणसे
एषाम्	= इन लोगोंका	अनर्थः	= (कोई) हानि नहीं होती (क्योंकि ये लाभ हानि तथा शुभ-अशुभसे ऊपर उठे रहते हैं)
कुशलाचरितेन	= शुभकर्मसे (तो)		
स्वार्थः	= (कोई) अपना लाभ		
न	= नहीं		

राजा परीक्षित् ! इस संसारमें ऐसे समर्थ ईश्वर सर्वथा अहंकारशून्य होते हैं। शुभ कर्म करनेसे उनका कोई स्वार्थसाधन—लाभ नहीं होता और उसके विपरीत लोकदृष्टिमें अशुभ कर्मसे उनकी कोई हानि नहीं होती। वे स्वार्थ या अनर्थ अर्थात् लाभ-हानि और शुभ-अशुभसे ऊपर उठे होते हैं ॥ ३३ ॥

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ।
ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥

किम्, उत, अखिलसत्त्वानाम्, तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम्,
ईशितुः, च, ईशितव्यानाम्, कुशलाकुशलान्वयः ॥ ३४ ॥

च	= फिर	ईशितव्यानाम्	= शासन करनेयोग्य
तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम्	= पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि तिर्यक् योनियोंके जीवों, मनुष्यों तथा देवताओं (आदि)	अखिलसत्त्वानाम्	= समस्त जीवोंके

ईशितुः	=	(एकमात्र)शासक (प्रभु श्रीकृष्ण)का	कुशला-कुशला-न्वयः	=	शुभ एवं अशुभके साथ (किसी प्रकारका) सम्बन्ध
उत	=	तो	किम्	=	हो ही कैसे सकता है ?

यह तो ईश्वरकोटिके समर्थ देवताओं तथा पुरुषोंकी बात है। भगवान् श्रीकृष्ण तो पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, मनुष्य-देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र नियन्ता—शासक प्रभु, सर्वलोकमहेश्वर हैं। उनके साथ किसी लौकिक शुभ और अशुभसे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध हो ही कैसे सकता है ॥ ३४ ॥

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः॥३५॥

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ताः, योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः, स्वैरम्, चरन्ति, मुनयः, अपि, न, नह्यमानाः, तस्य, इच्छया, आत्तवपुषः, कुतः, एव, बन्धः ॥ ३५ ॥

यत्पादपङ्क-जपराग-निषेवतृप्ताः	=	जिनके चरण-कमलोंकी रजके सेवनसे पूर्णकाम (भक्तजन)	योगप्रभाव-विधुताखिल-कर्मबन्धाः	=	अथवा योगसाधन-के प्रभावसे जिनके सारे कर्मबन्धन टूट गये हैं;
			मुनयः अपि	=	ऐसे योगिजन भी

न नह्यमानाः	= विधि-निषेधरूप सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त होकर	आत्तवपुषः	= देह धारण किये हुए
स्वैरम्	= स्वच्छन्दतापूर्वक	तस्य	= उन (पूर्ण पुरुषोत्तम कर्तुं अकर्तुम् अन्यथाकर्तुम् समर्थ) भगवान्पर
चरन्ति	= विचरते हैं (किसी प्रकारका नियन्त्रण नहीं मानते)	बन्धः	= (किसी प्रकार-का) बन्धन
इच्छया	= अपनी इच्छासे—लीलासे ही	कुतः एव	= हो ही कैसे सकता है

जिनके चरण-कमलोंकी रजका सेवन करके भक्तजन पूर्णकाम हो जाते हैं, जिनके साथ मनका योग हो जानेके प्रभावसे योगी मुनिजनोंके समस्त कर्मबन्धन कट जाते हैं, वे किसी भी विधि-निषेधको न मानकर स्वेच्छानुसार नियन्त्रणरहित स्वच्छन्द आचरण करते हुए भी बन्धनसे सर्वथा मुक्त रहते हैं, वे ही साक्षात् भगवान्, जो कर्मबन्धनसे पाञ्चभौतिक देहको प्राप्त न होकर अपनी लीलासे ही सच्चिदानन्दमय विग्रहरूपमें प्रकट हुए हैं, उन कर्तुं-अकर्तुं-अन्यथा कर्तुं समर्थ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्में किसी प्रकार-के कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ? ॥ ३५ ॥

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥

गोपीनाम्, तत्पतीनाम्, च, सर्वेषाम्, एव, देहिनाम्, यः, अन्तः, चरति, सः, अध्यक्षः, क्रीडनेन, इह, देहभाक् ॥ ३६ ॥

यः	= जो (भगवान्)	तत्पतीनाम्	= उनके पतियोंके
गोपीनाम्	= गोपियोंके	च	= तथा

सर्वेषाम् एव	=सभी	**अध्यक्षः**	=सर्वसाक्षी (परमेश्वर ही)
देहिनाम्	=प्राणियोंके	**इह**	=इस (भूलोक) में
अन्तः	=भीतर (हृदयमें)	**क्रीडनेन**	=लीलासे
चरति	=(अन्तर्यामीरूपसे) विहार करते हैं	**देहभाक्**	=शरीर धारण कर-के प्रकट हुए हैं
सः	=वे		

जो भगवान् गोपियोंके, उनके पतियोंके तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे विहार करते हैं, वे सबके साक्षी परमपति परमेश्वर ही दिव्य चिन्मय देह धारण करके यहाँ लीला कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥

अनुग्रहाय, भूतानाम्, मानुषम्, देहम्, आस्थितः,
भजते, तादृशीः, क्रीडाः, याः, श्रुत्वा, तत्परः, भवेत् ॥ ३७ ॥

भूतानाम्	=जीवोंपर	**क्रीडाः**	=लीलाएँ
अनुग्रहाय	=कृपा करनेके लिये (ही)	**भजते**	=करते हैं
मानुषम्	=मनुष्यकी (-सी)	**याः**	=जिन्हें
देहम्	=देह	**श्रुत्वा**	=सुनकर (मनुष्य)
आस्थितः	=धारण करके (भगवान्)	**तत्परः**	=उन (भगवान्) के परायण
तादृशीः	=वैसी	**भवेत्**	=हो जाता है

जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही भगवान् अपने सच्चिदानन्दघनस्वरूप-को मनुष्यदेहके रूपमें प्रकट करके वैसी ही लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर

मनुष्य उन भगवान्‌के परायण हो जाता है। अतएव भगवान्‌की इस दिव्य भावमयी लीलामें तनिक भी संदेह नहीं करना चाहिये ॥ ३७ ॥

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ।
मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥

न, असूयन्, खलु, कृष्णाय, मोहिताः, तस्य, मायया,
मन्यमानाः, स्वपार्श्वस्थान्, स्वान्, स्वान्, दारान्, व्रजौकसः॥ ३८ ॥

व्रजौकसः	= (इधर) व्रजवासी गोपोंने	**कृष्णाय**	= भगवान् श्रीकृष्ण-के प्रति
स्वान्	= अपनी	**खलु**	= तनिक भी
स्वान्	= अपनी	**न असूयन्**	= दोषदृष्टि नहीं की
दारान्	= पत्नियोंको	**तस्य**	= (क्योंकि वे) उनकी
स्वपार्श्व-स्थान्	= अपने समीपवर्ती	**मायया**	= मायासे
मन्यमानाः	= समझकर	**मोहिताः**	= मोहित हो रहे थे

यह भावमयी दिव्य लीला थी, जिसके कारण व्रजवासी गोपोंने भगवान्‌की योगमायासे मोहित होकर ऐसा अनुभव किया कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही सोयी हैं और इससे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की ॥ ३८ ॥

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ।
अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः॥ ३९॥

ब्रह्मरात्रे, उपावृत्ते, वासुदेवानुमोदिताः,
अनिच्छन्त्यः, ययुः, गोप्यः, स्वगृहान्, भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मरात्रे	= फिर ब्राह्ममुहूर्तके	वासुदेवानु-मोदिताः	= भगवान्‌की आज्ञा पाकर
उपावृत्ते	= आनेपर	अनिच्छन्त्यः	= न चाहनेपर भी
भगवत्-प्रियाः	= भगवान् श्रीकृष्ण-की प्यारी	स्वगृहान्	= अपने-अपने घरोंको
गोप्यः	= गोपियाँ	ययुः	= चली गयीं

फिर जब ब्राह्ममुहूर्त आ गया, तब भगवान्‌की अत्यन्त प्यारी वे गोप-सुन्दरियाँ अपने-अपने घरोंको लौट गयीं। यद्यपि उनकी लौटकर जानेकी तनिक भी इच्छा नहीं थी, तथापि वे अपनी प्रत्येक क्रियासे भगवान् श्रीकृष्ण-को ही सुखी करना चाहती थीं, उनमें श्रीकृष्ण-सुखसे पृथक् किसी निज-सुखकी कामना तो थी नहीं, इसलिये वे भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा होते ही चली गयीं ॥ ३९ ॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥

विक्रीडितम्, व्रजवधूभिः, इदम्, च, विष्णोः, श्रद्धान्वितः, अनुश्रृणुयात्, अथ, वर्णयेत्, यः, भक्तिम्, पराम्, भगवति, प्रतिलभ्य, कामम्, हृद्रोगम्, आशु, अपहिनोति, अचिरेण, धीरः ॥ ४० ॥

व्रजवधूभिः	= व्रजाङ्गनाओंके साथ	विक्रीडितम्	= रासक्रीडा (के वर्णन) को
विष्णोः	= भगवान् श्रीकृष्णकी		
इदम्	= इस	यः	= जो

श्रद्धान्वितः	=श्रद्धासे युक्त (होकर)	पराम्	=सर्वश्रेष्ठ प्रेमस्वरूपा
अनुशृणुयात्	=बार-बार सुनेगा	भक्तिम्	=भक्तिको
अथ च	=अथवा	प्रतिलभ्य	=प्राप्तकर
वर्णयेत्	=कहेगा	हृद्रोगम्	=हृदयके विकार-रूप (लौकिक)
धीरः	=(वह) धीर पुरुष		
आशु	=शीघ्र ही	कामम्	=कामसे
भगवति	=(उन) भगवान् श्रीकृष्णकी	अचिरेण	=अविलम्ब
		अपहिनोति	=मुक्त हो जायगा

जो धीर पुरुष व्रजललनाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी इस दिव्य भावमय चिन्मय रासक्रीडाका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करेगा, वह शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्णकी पराभक्तिको—सर्वश्रेष्ठ प्रेमस्वरूपा भक्तिको प्राप्त हो जायगा तथा तुरंत हृदयके विकाररूप लौकिक कामसे सर्वथा मुक्त हो जायगा ॥ ४० ॥

॥ पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥





(भक्तवर श्रीनन्ददासजीरचित)

श्रीरासपञ्चाध्यायी

पहला अध्याय

श्रीशुकदेवमुनिका ध्यान

वंदन करौं कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी ।
सुद्ध जोतिमय रूप सदा सुंदर अविकारी ॥ १ ॥
हरि लीला रस मत्त मुदित नित बिचरत जग मैं ।
अद्भुत गति कतहूँ न अटक है निकसे मग मैं ॥ २ ॥
नीलोत्पल दल स्याम अंग नव जोबन भ्राजै ।
कुटिल अलक मुख कमल मनौ अलि अवलि बिराजै ॥ ३ ॥
ललित बिसाल सुभाल दिपत जनु निकर निसाकर ।
कृष्न भगति प्रतिबंध तिमिर कहुँ कोटि दिवाकर ॥ ४ ॥
कृपा रंग रस ऐन नैन राजत रतनारे ।
कृष्न रसासव पान अलस कछु घूमघुमारे ॥ ५ ॥
उन्नत नासा अधर बिंब सुक की छबि छीनी ।
तिन बिच अद्भुत भाँति लसति कछु इक मसि भीनी ॥ ६ ॥
स्रवन कृष्न रस भवन गंड मंडल भल दरसै ।
प्रेमानंद मिली सुमंद मुसकनि मधु बरसै ॥ ७ ॥
कंबु कंठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै ।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिहि निरखत नासै ॥ ८ ॥
उर बर पर अति छबि कि भीर कछु बरनि न जाई ।
जिहि अंतर जगमगत निरंतर कुँवर कन्हाई ॥ ९ ॥
सुंदर उदर उदार रोमावलि राजति भारी ।
हिय सरबर रस पूरि चली मनु उमगि पनारी ॥ १० ॥

ता रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी ।
त्रिबली ता महँ ललित भाँति मनु उपजति लहरी ॥ ११ ॥
गूढ़ जानु आजानु बाहु मद गज गति लोलैं ।
गंगादिकनि पवित्र करत अवनी पर डोलैं ॥ १२ ॥
जब दिनमनि श्रीकृष्न दृगनि तें दूरि भए दुरि ।
पसरि पर्यौ अँधियार सकल संसार घुमड़ि घुरि ॥ १३ ॥
तिमिर ग्रसित सब लोक ओक लखि दुखित दयाकर ।
प्रगट कियौ अद्भुत प्रभाउ भागवत विभाकर ॥ १४ ॥
ताहू मैं पुनि अति रहस्य यह पंचाध्याई ।
तन महँ जैसें पंच प्रान अस सुक मुनि गाई ॥ १५ ॥
परम रसिक इक मीत मोहिं तिन आग्या दीन्ही ।
ताते मैं यह कथा जथामति भाषा कीन्ही ॥ १६ ॥

श्रीवृन्दावन-वर्णन

श्रीवृंदावन चिद्घन कछु छवि बरनि न जाई ।
कृष्न ललित लीला के काज धरि रह्यौ जड़ताई ॥ १७ ॥
जहँ नग खग मृग कुंज लता बीरुध तृन जेते ।
नहिन काल गुन प्रभा सदा सोभित रहे तेते ॥ १८ ॥
सकल जंतु अविरुद्ध जहाँ हरि मृग सँग चरहीं ।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरहीं ॥ १९ ॥
सब दिन रहत बसंत कृष्न अवलोकनि लोभा ।
त्रिभुवन कानन जा बिभूति करि सोभित सोभा ॥ २० ॥
ज्यौं लक्ष्मी निज रूप अनूप चरन सेवत नित ।
भ्रू बिलसति जु बिभूति जगत जगमगि रहि जित तित ॥ २१ ॥
श्री अनंत महिमा अनंत को बरनि सकै कवि ।
संकरषन सौं कछुक कही श्रीमुख जाकी छवि ॥ २२ ॥
देवन मैं श्रीरमारमन नारायन प्रभु जस ।
बन मैं वृंदावन सुदेस सब दिन सोभित अस ॥ २३ ॥

या बन की बरबानिक या बनहीं बनि आवै।
सेस महेस सुरेस गनेसहु पार न पावै ॥ २४ ॥
जहँ जेतिक द्रुम जाति कलपतरु सम सब लायक।
चिंतामनि सम भूमि सकल चिंतित फल दायक ॥ २५ ॥
तिन मधि इक जु कलपतरु जगि रहि जगमग जोती।
पत्र मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती ॥ २६ ॥
तिन मधि तिन के गंध लुब्ध अस गान करत अलि।
बर किंनर गंधर्व अपछरा तिन पर गईं बलि ॥ २७ ॥
अमृत फुही सुख गुही सुही अति परति रहति नित।
रास रसिक सुंदर पिय कौ स्रम दूर करन हित ॥ २८ ॥
या सुरतरु महँ अवर एक अद्भुत छबि छाजै।
साखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिंब बिराजै ॥ २९ ॥
ता पर कोमल कनक भूमि मनिमय मोहति मन।
दिखियत सब प्रतिबिंब मनौ धर महँ दुसरौ बन ॥ ३० ॥
तहँ इक मनिमय सिंघ पीठ सोभित सुंदर अति।
ता पर षोडस दल सरोज अद्भुत चक्राकृति ॥ ३१ ॥
मधि कमनीय करनिका सब सुख सुंदर कंदर।
तहँ राजत व्रजराज कुँवर बर रसिक पुरंदर ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्णकी शोभा

निकर बिभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुंदर नंद कुँवर उर पर सोइ लागत उडु जस ॥ ३३ ॥
मोहन अद्भुतरूप कहि न आवति छबि ताकी।
अखिल अंड ब्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी ॥ ३४ ॥
परमातम परब्रह्म सबन के अंतरजामी।
नारायन भगवान धरम करि सब के स्वामी ॥ ३५ ॥
बाल कुमार पुगंड धरम आक्रांत ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब कौ मन ॥ ३६ ॥

अस अद्भुत गोपाललाल सब काल बसत जहँ ।
याही तैं बैकुंठ बिभव कुंठित लागत तहँ ॥ ३७ ॥

शरद्-रजनी-वर्णन

जदपि सहज माधुरी बिपिन सब दिन सुखदाई ।
तदपि रँगीली सरद समय मिलि अति छबि पाई ॥ ३८ ॥
ज्यौं अमोल नग जगमगाय सुंदर जराय सँग ।
रूपवंत गुनवंत भूरि भूषन भूषित अँग ॥ ३९ ॥
रजनी मुख सुख देत ललित मुकुलित जु मालती ।
ज्यौं नव जोवन पाइ लसति गुनवती बाल ती ॥ ४० ॥
नव फूलनि सौं फूलि फूल अस लगति लुनाई ।
सरद छबीली छपा हँसत छबि सौं मनु आई ॥ ४१ ॥
ताही छिन उड़राज उदित रस रास सहायक ।
कुमकुम मंडित प्रिया बदन जनु नागर नायक ॥ ४२ ॥
कोमल किरन अरुनिमा बन मैं ब्यापि रही अस ।
मनसिज खेल्यौ फागु घुमडि घुरि रह्यौ गुलाल जस ॥ ४३ ॥
फटिक छरी सी किरन कुंज रंध्रनि जब आई ।
मानौ बितनु बितान सुदेस तनाउ तनाई ॥ ४४ ॥
मंद मंद चलि चारु चंद्रिका अस छबि पाई ।
उझकत हैं पिय रमा रमन कौं मनु तकि आई ॥ ४५ ॥

मुरली-वर्णन

तब लीनी कर कमल जोगमाया सी मुरली ।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुरली ॥ ४६ ॥
जाकी धुनि तैं अगम निगम प्रगटे बड़ नागर ।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर ॥ ४७ ॥
नागर नवल किसोर कान्ह कल गान कियौ अस ।
बाम बिलोचन बालन को मन हरन होइ जस ॥ ४८ ॥

व्रजबालाओंकी विरह-दशा

सुनत चलीं व्रजवधू गीत धुनि कौ मारग गहि ।
भवन भीति द्रुम कुंज पुंज कितहूँ अटकीं नहिं ॥ ४९ ॥
नाद अमृत कौ पंथ रँगीलौ सूछम भारी ।
तिहिं व्रजतिय भले चलीं आन कोउ नहिं अधिकारी ॥ ५० ॥
जे रहि गईं घर अति अधीर गुनमय सरीर बस ।
पुन्य पाप प्रारब्ध सँच्यौ तन नहिं न पच्यौ रस ॥ ५१ ॥
परम दुसह श्रीकृष्न विरह दुख व्याप्यौ तिन मैं ।
कोटि बरस लग नरक भोग अघ भुगते छिन मैं ॥ ५२ ॥
जिय पिय कौ धरि ध्यान तनिक आलिंगन कियौ जब ।
कोटि स्वर्ग सुख भोग छीन कीन्हे मंगल सब ॥ ५३ ॥
इतर धातु पाहनहि परसि कंचन ह्वै सोहै ।
नंद सुवन सौं परम प्रेम इह अचरज को है ॥ ५४ ॥
तेउ पुनि तिहि मग चलीं रँगीली तजि गृह संगम ।
जनु पिंजरनि तें उड़े छुटे नव प्रेम बिहंगम ॥ ५५ ॥
सावन सरित न रुकै करै जौ जतन कोऊ अति ।
कृष्न गहे जिन के मन ते क्यौं रुकहिं अगम गति ॥ ५६ ॥
सुद्ध जोतिमय रूप पाँच भौतिक तैं न्यारी ।
तिनहि कहा कोउ गहै जोति सी जगत उज्यारी ॥ ५७ ॥
जदपि कहूँ के कहूँ वधुनि आभरन बनाए ।
हरि पिय पैं अनुसरत जहीं के तहिं चलि आए ॥ ५८ ॥

राजा परीक्षित्‌का प्रश्न

परम भागवत रतन रसिक जु परीछित राजा ।
प्रस्न कर्‌यौ रस पुष्ट करन निज सुख के काजा ॥ ५९ ॥
परम धरम कौ पात्र जानि जग कौ हितकारी ।
उदर दरी मैं करी कान्ह जाकी रखवारी ॥ ६० ॥

जाकौं सुंदर स्याम कथा छिन छिन नइ लागै ।
ज्यौं लंपट पर जुवति बात सुनि सुनि अनुरागै ॥ ६१ ॥
अहो मुनि क्यौं गुनमय सरीर परिहरि पाए हरि ।
जानि भजे कमनीय कान्ह नहिं ब्रह्म भाव करि ॥ ६२ ॥

प्रश्नका समाधान

तव कहि श्रीसुकदेव देव यह अचिरज नाहीं ।
सर्व भाव भगवान कान्ह जिन्ह के हिय माहीं ॥ ६३ ॥
परम दुष्ट सिसुपाल बालपन तैं निंदकु अति ।
जोगिन कौं जो दुर्लभ सुलभहिं पाई सोइ गति ॥ ६४ ॥
हरि रस ओपी गोपी सकल तियनि तैं न्यारी ।
कमल नैन गोविंद चंद की प्रान पियारी ॥ ६५ ॥

कृष्ण-गोपी-मिलन

तिन के नूपुर नाद सुने जब परम सुहाए ।
तब हरि के मन नैन सिमिटि सब स्रवननि आए ॥ ६६ ॥
झुनक मुनक पुनि भली भाँति सौं प्रगट भईं जब ।
पिय के अँग अँग सिमटि छबीले नैन मिले तब ॥ ६७ ॥
सुभग बदन सब चितवन पिय के नैन बने यौं ।
बहुत सरद ससि माँहि अरबरे ह्वै चकोर ज्यौं ॥ ६८ ॥
अति आदर करि लईं भईं पिय पैं ठाढ़ी अनु ।
छबिलि छटनि मिलि छेक्यौ मंजुल घन मूरति जनु ॥ ६९ ॥
नागर गुरु नँद नंद चंद हँसि मंद मंद तब ।
बोले बाँके बैन प्रेम के परम ऐन सब ॥ ७० ॥
उज्जल रस को यह सुभाव बाँकी छवि छावै ।
बंक चहनि पुनि कहनि बंक अति रसहि बढ़ावै ॥ ७१ ॥
अहो तिया कहा जानि भवन तजि कानन डगरीं ।
अर्द्ध गई सर्वरी कछुक डर डरीं न सगरीं ॥ ७२ ॥

लाल रसिक के बंक बचन सुनि चकित भईं यौं ।
बाल मृगिन की माल सघन बन भूलि परी ज्यौं ॥ ७३ ॥
मंद परसपर हँसीं लसीं तिरछी अँखियाँ अस ।
रूप उदधि उतराति रँगीली मीन पाँति जस ॥ ७४ ॥
जब पिय कह्यौ घर जाहु, अधिक चित चिंता बाढ़ी ।
पुतरिन की सी पाँति रहि गईं इकटक ठाढ़ी ॥ ७५ ॥
दुख सौं दवि छवि सींव ग्रीव नै चली नाल सी ।
अलक अलिन के भार नमित मनु कमल माल सी ॥ ७६ ॥
हिय भरि विरह हुतासन सासन सँग आवत झर ।
चले कछुक मुरझाइ मधु भरे अधर बिंब बर ॥ ७७ ॥
तब बोलीं व्रज बाल लाल मोहन अनुरागी ।
गद्गद सुंदर गिरा गिरिधरहि मधुरी लागी ॥ ७८ ॥
अहो ! अहो ! मोहन प्राननाथ सोहन सुखदायक ।
क्रूर बचन जनि कहौ नहिन ये तुम्हरे लायक ॥ ७९ ॥
जौ कोउ बूझै धरम, तबहिं तासौं कहिए पिय ।
बिनही बूझे धरम कितहिं कहिए दहिए हिय ॥ ८० ॥
नेम धर्म जप तप ये सब कोउ फलहिं बतावैं ।
यह कहुँ नाहिन सुनी जो फल फिरि धरम सिखावैं ॥ ८१ ॥
अरु यह तुम्हरौ रूप धरम के धरमहि मोहै ।
घर में को तिय धरम धरम या आगें को है ॥ ८२ ॥
नगनि कौ धरम न रह्यौ पुलकि तन चले ठौर तैं ।
खग मृग गो बछ मच्छ कच्छ ते रहे कौर तैं ॥ ८३ ॥
त्यौं ही पिय की मुरली जुरली अधर सुधा रस ।
सुनि निजु धरम न तजै तरुनि त्रिभुवन महिं को अस ॥ ८४ ॥
प्रेम पगे सुनि बचन आँच सी लगि आई जिय ।
पिघरि चल्यौ नवनीत मीत सुंदर मोहन हिय ॥ ८५ ॥

वन-विहार

विहँसि मिले नँदलाल निरखि व्रजबाल बिरह बस ।
जदपि आतमाराम रमत भए परम प्रेम रस ॥ ८६ ॥
बिहरत बिपिन बिहार उदार नवल नँदनंदन ।
नव कुमकुम घनसार चारु चरचित तन चंदन ॥ ८७ ॥
गोपीजन मन गोहन मोहन लाल बने यौं ।
अपनी दुति के उडुगन उडुपति घन खेलत ज्यौं ॥ ८८ ॥
कुंजनि कुंजनि डोलत मनु घन तैं घन आवत ।
लोचन तृषित चकोरन कें चित चौंप बढ़ावत ॥ ८९ ॥
सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गए तहँ ।
कोमल मलय समीर छबिन की महाभीर जहँ ॥ ९० ॥
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई ।
गुंजत मंजु अलिंद बेनु जनु बजति सुहाई ॥ ९१ ॥
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत ।
इत घनसार तुसार मलय मंदार झकोरत ॥ ९२ ॥
इत लवंग नवरंग एलची झेलि रही रस ।
इत कुरबक केवरा केतकी गंध बंधु बस ॥ ९३ ॥
इत तुलसी छबि हुलसी छाँड़ति परिमल लपटैं ।
इत कमोद आमोद गोद भरि भरि सुख दपटैं ॥ ९४ ॥
उज्जल मृदुल बालुका कोमल सुभग सुहाई ।
जमुना जू निज करतरंग करि आपु बनाई ॥ ९५ ॥
बिलसत बिविध बिलास हास नीवी कुच परसत ।
सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यौं बरसत ॥ ९६ ॥

मदन-मद-हरण

तहँ आयौ वह मैन पंचसर कर हैं जाकें ।
ब्रह्मादिक कौं जीति बढ़ि रह्यौ अति मद ताकें ॥ ९७ ॥

निरखि ब्रजबधू संग रँगभरे नव किसोर तन ।
हरि मनमथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ कौ मन ॥ ९८ ॥
मुरछि पर्यौ तब मैन कहूँ धनु कहुँ निषंग सर ।
लखि रति पति की दसा भीत भइ मारति उर कर ॥ ९९ ॥
पुनि पुनि पियहि अलिंगति रोवति अति अनुरागी ।
मदन के वदन चुवाइ अमृत भुज भरि लै भागी ॥१००॥

गोपी-गर्व

अस अद्भुत पिय मोहन सौं मिलि गोप दुलारी ।
नहिं अचरजु जौ गरब करहिं गिरिधर की प्यारी ॥१०१॥
रूप भरीं गुन भरीं भरीं पुनि परम प्रेम रस ।
क्यौं न करैं अभिमान कान्ह भगवान किए बस ॥१०२॥
जहँ नदि नीर गँभीर तहाँ भल भँवरी परई ।
छिलछिल सलिल न परै, परै तौ छवि नहिं करई ॥१०३॥
प्रेम पुंज बरधन के काज ब्रजराज कुँवर पिय ।
मंजु कुंज मैं नैकु दुरे अति प्रेम भरे हिय ॥१०४॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडावर्णने नन्ददासकृतौ रसिकजनप्राणो नाम प्रथमोऽध्यायः ।



दूसरा अध्याय

मधुर वस्तु ज्यौं खात निरंतर सुख तौ भारी ।
बीच-बीच कटु अम्ल तिक्त अतिसै रुचिकारी ॥ १ ॥
ज्यौं पट पुट के दिए निपट अति सरस परै रँग ।
तैसेहिं रंचक विरह प्रेम के पुंज बढ़त अँग ॥ २ ॥
जिन के नैन निमेष ओट कोटिक जुग जाहीं ।
तिन के गह्वर कुंज ओट दुख अगनित आहीं ॥ ३ ॥

विरह-दशा-वर्णन

ठगी रहीं व्रजबाल लाल गिरिधर पिय बिनु यौं ।
निधन महानिधि पाइ बहुरि ज्यौं जाइ भई त्यौं ॥ ४ ॥
ह्वै गईं विरह बिकल तब बूझत द्रुम बेली बन ।
को जड़ को चैतन्य कछु न जानत बिरही जन ॥ ५ ॥
हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनि हित दै चित ।
मान हरन मन हरन गिरिधरन लाल लखे इत ॥ ६ ॥
हे केतकि ! इत तैं चितए कितहूँ पिय रूसे ।
कै नँदनंदन मंद मुसकि तुमरे मन मूसे ॥ ७ ॥
हे मुकताफल बेलि ! धरैं मुकता मनि माला ।
निरखे नैन बिसाल मोहनै नंद के लाला ॥ ८ ॥
हे मंदार उदार बीर करबीर महामति ।
देखे कहुँ बलबीर धीर मन हरन धीर गति ॥ ९ ॥
हे चंदन ! दुखकंदन ! सब कहुँ जरत सिरावहु ।
नँद नंदन जगबंदन चंदन हमहिं मिलावहु ॥ १० ॥
बूझहु री इन लतनि फूलि रहि फूलनि सोहीं ।
सुंदर पिय कर परस बिना अस फूल न होहीं ॥ ११ ॥
हे सखि ! ये मृगबधू इनहि किन बूझहु अनुसरि ।
डहडहे इन के नैन अबहिं कतहूँ चितए हरि ॥ १२ ॥

अहो कदंब, अहो अंब, निंब, क्यों रहे मौन गहि ।
अहो वट ! तुंग सुरंग बीर कहुँ इत उलहे लहि ॥ १३ ॥
जमुन निकट के बिटप पूछि भइँ निपट उदासी ।
क्यौं कहिहैं सखि महा कठिन ये तीरथवासी ॥ १४ ॥
हे अवनी ! नवनीत चोर चित चोर हमारे ।
राखे कितै दुराइ बतावहु प्रानपियारे ॥ १५ ॥
अहो तुलसि कल्यानि ! सदा गोविंद पद प्यारी ।
क्यौं न कहति तू नँद नंदन सौं बिथा हमारी ॥ १६ ॥
अपने मुख चाँदने चलैं सुंदरि तिन माहीं ।
जहँ आवै तम पुंज कुंज गहबर तरु छाहीं ॥ १७ ॥
इहि बिधि बन घन बूझि ढूँढ़ि उन्मत की नाईं ।
करन लगीं मन हरन लाल लीला मन भाईं ॥ १८ ॥
मोहन लाल रसाल की लीला इनही सोहै ।
केवल तनमय भईं कछु न जानतिं हम को हैं ॥ १९ ॥
भृंगी भय तैं भृंग होत इक कीटु महा जड़ ।
कृष्न भगति तें कृष्न होन कछु नहिं अचरज बड़ ॥ २० ॥
तब पायौ पिय पद सरोज कौ खोज रुचिर तहँ ।
जव, गद, अंकुस, कुलिस, कमल, धुज जगमगात जहँ ॥ २१ ॥
जो रज सिव अज कमला खोजत जोगी जन हिय ।
सो रज बंदन करन लगीं सिर धरन लगीं तिय ॥ २२ ॥
देखे ढिग जगमगत तहाँ प्यारी तिय के पग ।
चितै परस्पर चकित भईं जुरि चलीं तिही मग ॥ २३ ॥
आगें चलि पुनि अवलोकी नवपल्लव सैनी ।
जहँ पिय निजकर कुसुम सुसुम लै गूँथी बेनी ॥ २४ ॥
तहँ पायौ इक मंजु मुकुर मनि जटित बिलोलै ।
तिहि बूझैं ब्रजबाल बिरह भरि सोउ न बोलै ॥ २५ ॥

तर्क करत अपमाहिं अहो यह क्यौं कर लीन्हौ।
तिन मैं तिन के हिय की जानि उन उत्तर दीन्हौ ॥ २६ ॥
बेनी गुहन समय छबिलौ पाछैं बैठ्यौ जब।
सुंदर वदन विलोकनि पिय कैं अँतरु भयो तब ॥ २७ ॥
तातैं मंजुल मुकुर सुकर लै वाल दिखायौ।
श्रीमुख कौ प्रतिबिंब सखी तब सनमुख आयौ ॥ २८ ॥
धन्न कहत भईं ताहि, नाहिं कछु मन मैं कोपीं।
निरमत्सर जे संत तिन कि चूड़ामनि गोपीं ॥ २९ ॥
इन नीके आराधे हरि ईस्वर वर जोई।
तातैं निधरक अधर सुधा रस पीवत सोई ॥ ३० ॥
आगैं चलि पुनि तनक दूरि देखी सो ठाढ़ी।
जासौं सुंदर नंद कुँवर पिय अति रति बाढ़ी ॥ ३१ ॥
गोरे तन की जोति छूटि छबि छाय रही धर।
मानहुँ ठाढ़ी कुँवरि सुभग कंचन अवनी पर ॥ ३२ ॥
जनु घन तैं बिजुरी बिछुरी मानिनि तनु काछैं।
किधौं चंद्र सौं रूसि चंद्रिका रहि गइ पाछैं ॥ ३३ ॥
नयननि तैं जलधार हार धोवत धर धावत।
भँवर उड़ाइ न सकति बास बस मुख ढिग आवत ॥ ३४ ॥
'क्वासि क्वासि पिय महाबाहु' यौं बदति अकेली।
महाविरह की धुनि सुनि रोवत खग द्रुम बेली ॥ ३५ ॥
दौरि भुजनि भरि लईं सबनि लै लै उर लाईं।
मनहुँ महानिधि खोइ मध्य आधी निधि पाईं ॥ ३६ ॥
जित तित तैं सब अहुरि बहुरि जमुना तट आईं।
जहँ नँद नंदन जग बंदन पिय लाड़ लड़ाईं ॥ ३७ ॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडायां नन्ददासकृतौ
गोपीविश्लेषवर्णनो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

तीसरा अध्याय

कहन लगीं अहो कुँवर कान्ह व्रज प्रगटे जब तें।
अवधिभूत इंदिरा इहाँ क्रीड़त हैं तब तें ॥ १ ॥
नैन मूँदिबौ महा अस्त्र लै हाँसी फाँसी।
मारत हौ कित सुहथ नाथ बिनु मोल की दासी ॥ २ ॥
बिष तैं जल तैं ब्याल अनल तैं चपला झर तैं।
क्यों राखीं, नहिं मरन दई नागर ! नगधर तैं ॥ ३ ॥
जब तुम जसुदा सुवन भए पिय अति इतराने।
बिस्व कुसल के काज बिधिहिं बिनती कै आने ॥ ४ ॥
अहो मीत ! अहो प्राननाथ ! यह अचरज भारी।
अपननि जौ मरिहौ करिहौ काकी रखवारी ॥ ५ ॥
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन मैं।
सिल त्रिन कंटक अटकत कसकत हमरे मन मैं ॥ ६ ॥
प्रनत मनोरथ करन चरन सरसीरुह पिय के।
का घटि जै है नाथ ! हरत दुख हमरे हिय के ॥ ७ ॥
फनी फनन पर अरपे डरपे नहिन नैकु तब।
छतियन पै पग धरत डरत कत कुँवर कान्ह अब ॥ ८ ॥
जानति हैं हम तुम जु डरत ब्रजराज दुलारे।
कोमल चरन सरोज उरोज कठोर हमारे ॥ ९ ॥
हरें हरें पग धरिय हमैं पिय निपट पियारे।
कत अटवी महिं अटत गड़त तृन कूर्प अन्यारे ॥ १० ॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडायां नन्ददास-कृतौ गोपिका-गीत-उपालम्भवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

चौथा अध्याय

यहि विधि प्रेम सुधानिधि मैं अति बढ़ी कलोलैं।
ह्वै गईं विह्वल बाल लाल सौं अलबल बोलैं ॥ १ ॥
तब तिनही मैं तैं निकसे नँद नंदन पिय यौं।
दृष्टि बंध कै दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं ॥ २ ॥
पीत बसन बनमाल बनी मंजुल मुरली हथ।
मंद मधुरतर हँसत निपट मनमथ के मनमथ ॥ ३ ॥
पियहि निरखि तिय बृंद उठीं सब इकै बार यौं।
परि घट आए प्रान बहुरि उझकत इंद्रीं ज्यौं ॥ ४ ॥
महा छुधित कौं जैसें असन सौं प्रीति सुनी है।
ताहू तैं सतगुनी सहसगुनि कोटिगुनी है ॥ ५ ॥
कोउ चटपटि सौं उर लपटी कोउ करबर लपटी।
कोउ गल लपटी कहति भलैं भलैं कान्हर कपटी ॥ ६ ॥
कोउ नगधर बर पिय की गहि रहि परिकर पटुकी।
जनु नव घन तैं सटकि दामिनी घटा सुँ अटकी ॥ ७ ॥

बैठे पुनि तिहिं पुलिन परम आनंद भयो है।
छबिलिन अपनो छादन छवि सौं बिछा दयो है॥ ८ ॥
एक एक हरि देव सबन कें आसन बैसे।
किए मनोरथ पूरन जिन मन उपजे जैसे॥ ९ ॥
ज्यौं अनेक जोगीस्वर हिय मैं ध्यान धरत हैं।
इकहि बेर इक मूरति सब कौं सुख बितरत हैं॥ १० ॥
कोटि कोटि ब्रह्मांड जदपि इकली ठकुराई।
ब्रजदेबिन की सभा साँवरैं अति छवि पाई॥ ११ ॥
त्यौं सब गोपिन सनमुख सुंदर स्याम बिराजै।
ज्यौं नवदल मंडलहिं कमल कर्णिका सुभ्राजै॥ १२ ॥
बूझन लागीं नवल बाल नँदलाल पियहि तब।
प्रीति रीति की बात मनहिं मुसकाति जाति सब॥ १३ ॥
इक भजते कौं भजैं, एक अनभजतनि भजहीं।
कहौ कान्ह ! ते कवन आहिं जे दुहुअनि तजहीं॥ १४ ॥
जदपि जगत गुरु नागर जसुमति नंद दुलारे।
पै गोपिन के प्रेम अग्र अपने मुख हारे॥ १५ ॥
तब बोले पिय नव किसोर हम रिनी तिहारे।
अपने हिय तैं दूरि करौ सब दोस हमारे॥ १६ ॥
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जौ।
हे मनहरनी तरुनी उरिनी नाहिं होउँ तौ॥ १७ ॥
सकल बिस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेम मई तुम्हरी माया मो मन मोहति है॥ १८ ॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडायां नन्ददासकृतौ गोपीविरहतापोपशमनो नाम चतुर्थोऽध्यायः।

पाँचवाँ अध्याय

सुनि पिय के रस बचन सवनि गँसि छाँडि दयौ है।
बिहँसि आपने उर सौं लाल लगाय लयौ है ॥ १ ॥
कोटि कलपतरु लसत बसत पद पंकज छाहीं।
कामधेनु पुनि कोटि कोटि बिलुठत रज माहीं ॥ २ ॥
सो पिय भए अनुकूल तूल कोउ भयो न है अब।
निरवधि सुख कौ मूल सूल उनमूल करी सब ॥ ३ ॥
आरंभित अद्भुत सुरास उहि कमल चक्र पर।
नमित न कितहूँ होइ, सबै निरतत बिचित्र बर ॥ ४ ॥
नव मरकत मनि स्याम कनक मनि गन व्रजबाला।
बृंदावंन कौं रीझि मनहुँ पहिराई माला ॥ ५ ॥
नूपुर, कंकन, किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली ॥ ६ ॥
मृदुल मुरज टंकार ताल झंकार मिली धुनि।
मधुर जंत्र के तार भँवर गुंजार रली पुनि ॥ ७ ॥

तैसिय मृदु पद पटकनि, चटकनि कठतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की ॥ ८ ॥
साँवरे पिय सँग निरतत चंचल व्रज की बाला।
मनु घन मंडल खेलत मंजुल चपला माला ॥ ९ ॥
चंचल रूप लतनि सँग डोलति जनु अलि सेनी।
छबिलि तियन के पाछैं आछैं बिलुलित बेनी ॥ १० ॥
मोहन पिय की मलकनि ढलकनि मोर मुकट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥ ११ ॥
कोउ सखि कर पर तिरप बाँधि निरतत छबिली तिय।
मानहुँ करतल फिरत लट्टू लखि लट्टू होत पिय ॥ १२ ॥
कोउ नायक के भेद भाव लावन्य रूप सब।
अभिनय करि दिखरावति गावति गुन पिय के जब ॥ १३ ॥
तब नागर नँदलाल चाहि चित चकित होत यौं।
निज प्रतिबिंब बिलास निरखि सिसु भूलि रहत ज्यौं ॥ १४ ॥
रीझि परस्पर वारत अंबर भूषन अँग के।
जहँ के तहँ बनि रहत सकल अद्‌भुत रँग रँग के ॥ १५ ॥
कोउ मुरली सँग रली रँगीली रसहि बढ़ावति।
कोउ मुरली कौं छेंकि छबीली अद्‌भुत गावति ॥ १६ ॥
ताहि साँवरौ कुँवर रीझि हँसि लेत भुजनि भरि।
चुंबन करि सुख सदन बदन तैं दै तमोल ढरि ॥ १७ ॥
जग में जो संगीत नृत्य सुर नर रीझत जिहि।
सो व्रज तिय कें सहज गान आगम गावत तिहि ॥ १८ ॥
जो व्रज देवी निरतत मंडल रास महा छबि।
सो रस कैसें बरनि सकै इहँ ऐसो को कबि ॥ १९ ॥

राग रागिनी सम जिन कौ बोलिबौ सुहायौ।
सो कैसें कहि आवै जो व्रज देविन गायौ ॥ २० ॥
ग्रीव ग्रीव भुज मेलि केलि कमनीय बढ़ी अति।
लटकि लटकि वह निर्त्तनि कापै कहि आवै गति ॥ २१ ॥
अद्भुत रस रह्यौ रास, गीत धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै चली, सलिल ह्वै रह्यौ सिला पुनि ॥ २२ ॥
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उडु मंडल सिगरौ।
पाछें रबि रथ थक्यौ, चल्यौ नहिं आगें डगरौ ॥ २३ ॥
रीझि सरद की रजनी सजनी केतिक बाढ़ी।
बिलसत अतिसय स्याम जथारुचि अति रति गाढ़ी ॥ २४ ॥
इहि बिधि बिबिध बिलास बिलसि निसि कुंज सदन के।
चले जमुन जल क्रीड़न व्रीड़न बृंद मदन के ॥ २५ ॥
उरसि मरगजी माल चाल मद गज जिमि मलकत।
घूमत रस भरे नैन गंड थल श्रम कन झलकत ॥ २६ ॥
धाय जमुन जल धँसे लसे छबि परति न बरनी।
बिहरत मनु गजराज संग लियें तरुनी करनी ॥ २७ ॥
तियनि के तन जल मगन बदन तहुँ यौं छबि छाए।
फूलि रहे जनु जमुन कनक के कमल सुहाए ॥ २८ ॥
मंजुल अंजुलि भरि भरि पिय पैं तिय जल मेलत।
जनु अलि सौं अरबिंद बृंद मकरंदनि खेलत ॥ २९ ॥
यह अद्भुत रस रासि कहत कछु नहिं कहि आवै।
सुक सनकादिक नारद सारद अतिसय भावै ॥ ३० ॥
सिव मनहीं मन ध्यावैं, काहू नाहिं जनावैं।
सेस सहस मुख गावैं, अजहूँ अंत न पावैं ॥ ३१ ॥

अज अजहूँ रज वांछत सुंदर बृंदावन की।
सो न तनक कहुँ पावत सूल मिटत नहिं तन की ॥ ३२ ॥
जदपि पद कमल कमला अमला सेवत निसि दिन।
यह रस अपनें सपनें कबहूँ नहिं पायौ तिन ॥ ३३ ॥
बिनु अधिकारी भए, नहिन बृंदाबन सूझै।
रेनु कहाँ तें सूझै जब लौं बस्तु न बूझै ॥ ३४ ॥
निपट निकट घट में जो अंतरजामी आही।
बिषय बिदूषित इंद्रिय पकरि सकै नहिं ताही ॥ ३५ ॥
जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै।
प्रेम भगति सो पावै अरु सब के मन भावै ॥ ३६ ॥
हीन असधी निंदक नास्तिक धरम बहिर्मुख।
तिन सौं कबहुँ न कहै, कहै तौ नहिन लहै सुख ॥ ३७ ॥
भगत जनन सौं कहै, जिन्है भागवत धरम बल।
ज्यौं जमुना के मीन लीन नित रहत जमुन जल ॥ ३८ ॥
जदपि सप्त निधि मेदिनि जमुना निगम बखानै।
ते तिहि धारहिं धार रमत न छुअत जल आनै ॥ ३९ ॥
यह उज्जल रस माल कोटि जतनन कै पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ यहि तोरौ जिनि कोई ॥ ४० ॥
श्रवन कीरतन सार, सार सुमिरन कौ है पुनि।
ग्यान सार हरि ध्यान सार स्रुतिसार गहत गुनि ॥ ४१ ॥
अघ हरनी मन हरनी सुंदर प्रेम बितरनी।
'नंददास' के कंठ बसौ नित मंगल करनी ॥ ४२ ॥

श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे रासक्रीडायां
नन्ददासकृतौ पञ्चमोऽध्यायः।

श्रीकृष्णभक्ति-रसके कुछ ग्रन्थ

श्रीमद्भागवतमहापुराण–(दो खण्डोंमें); सटीक, पृष्ठ २०३२, चित्र तिरंगे २५, सुनहरा १, सजिल्द, मूल्य ... १५)

श्रीशुक-सुधा-सागर–आकार बहुत बड़ा; टाइप बहुत बड़े, पृष्ठ १३६०, चित्र रंगीन २०, सजिल्द, मूल्य ... २०)

श्रीभागवत-सुधा-सागर–सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, पृष्ठ १०१६, चित्र तिरंगे २५, सुनहरा १, सजिल्द, मूल्य ... ८॥)

श्रीप्रेम-सुधा-सागर–श्रीमद्भागवतके केवल दशमस्कन्धका भाषानुवाद, पृष्ठ ३१६, चित्र तिरंगे १४, सुनहरा १, सजिल्द, मूल्य ... ३॥)

श्रीभागवतामृत–(सटीक) श्रीमद्भागवतके चुने हुए प्रसङ्ग, डिमाई आठपेजी, पृष्ठ ३०४, तिरंगे चित्र ८, सजिल्द, मूल्य ... १॥।)

श्रीकृष्ण-गीतावली–सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य ... ।–)

सूर-विनय-पत्रिका–सरल भावार्थसहित, सचित्र, पृष्ठ ३२४, मूल्य ॥।=), सजिल्द ... ... १।)

श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी (सूर-रचित)–सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २९६, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य ॥।=), सजिल्द ... १।)

श्रीकृष्ण-माधुरी (सूर-रचित)–सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २८८, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य १) सजिल्द ... १।=)

पता–**गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)**

اوم تت ست

رام نام جپ

کلجگ میں ترپتی جی کے مندر میں بھگوان بالاجی کا پرویش

اور ترپتی مندر کے پجاری کو درشن دیکر الوپ ہوگئے

پجاری جی کو کہا کہ اپنے تمام شہر میں میرا پرچار کرو

اور کہو کہ جلدی ہی کلجگ میں سمپورن کلکی کا اوتار ہونے والا

ہے [illegible] جو [illegible] پڑھ کر آگے نہ بھیجے گا اس کے گھر [illegible] جائیگا

